जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-४

सुवर्णपुरीके श्री प्रवचनमंडपकी दीवारोंके चित्रोंमेंसे
निजात्मावलंबी ज्ञानी धर्मात्माके जीवन पर आधारित

जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग-४)

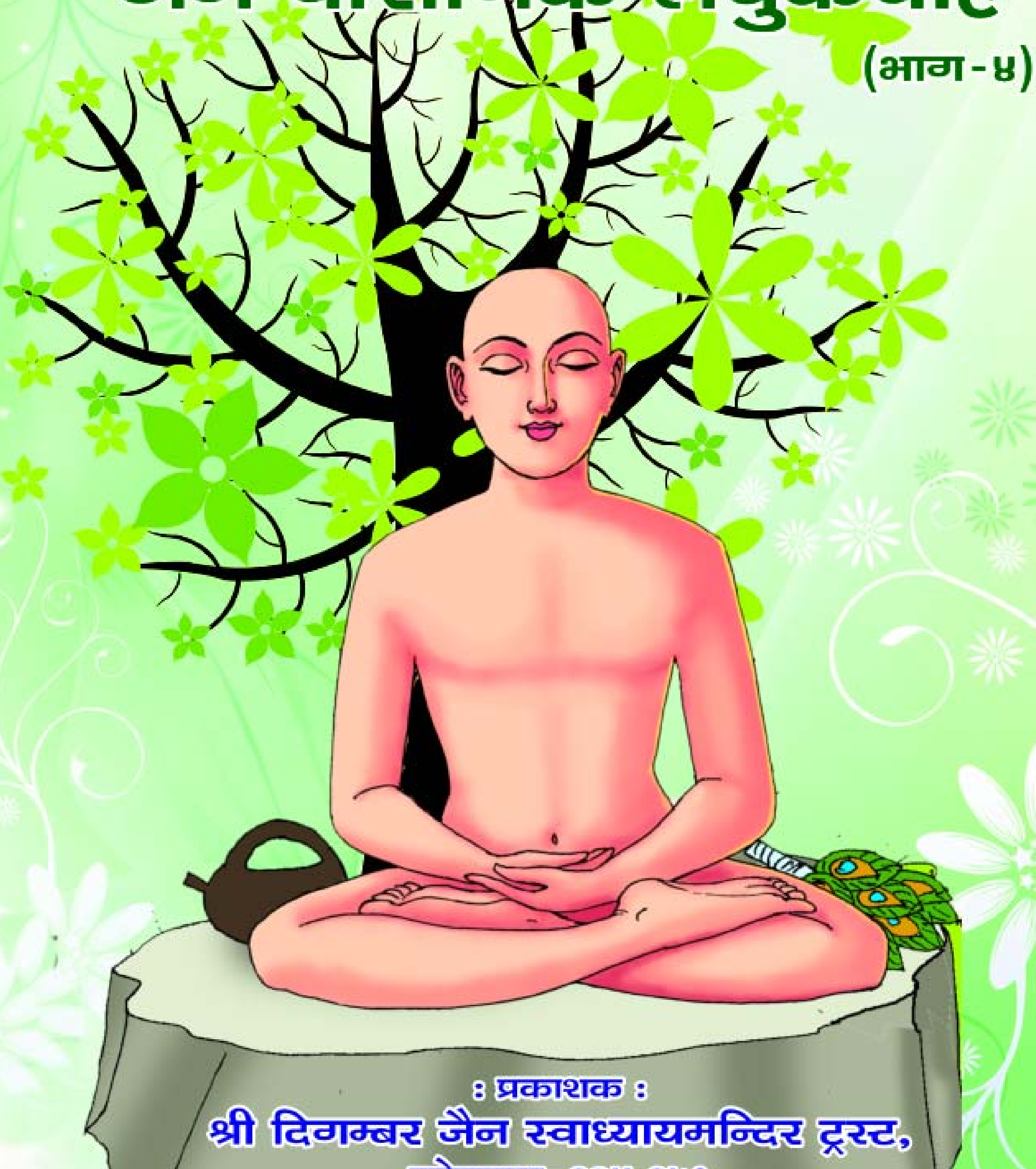

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़-३६४ २५०
website :www.kanjiswami.org Email : contact@kanjiswami.org

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ - ३६४२५०

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प-२४९

ॐ

नमः सद्गुरुवे।

सुवर्णपुरीके श्री प्रवचनमंडपकी दीवारोंके चित्रोंमेंसे
निजात्मावलंबी ज्ञानी धर्मात्माओंके जीवन पर आधारित

जैन पौराणिक लघुकथाएँ

(भाग-४)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन
स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ़-364 250
website :www.kanjiswami.org
Email : contact@kanjiswami.org

प्रथम आवृत्ति प्रत : १५०० वि. सं. २०७२ ई.स. २०१५

जैन पौराणिक लघुकथाएँ (हिन्दी) भाग-४के
स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता
आत्मार्थी श्री जितेन्द्रभाई त्रंबकलाल वाधर परिवार
जामनगर

जैन पौराणिक लघुकथाएँ (हिन्दी) भाग-४के
कायमी किंमत घटानेवाले दाता
स्व. सूरजमलजी चंपावत हस्ते मानुबहिन
अर्चना, मुक्तेश, अनुभूति, चिदेश, क्षायिक, मीमांसा चंपावत
उदयपुर

मूल्य : रु. 30=00

मुद्रक :
स्मृति ऑफसेट
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

परम पूज्य सद्‌गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

प्रकाशकीय निवेदन

परमोपकारी अध्यात्मयुगस्त्रष्टा, आत्मानुभवी सत्पुरुष पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने अपनी अनुभवरसमयी आर्द्र वाणीमें जिनेन्द्रकथित चारों अनुयोगके सुमेलपूर्वक अध्यात्मरसगर्भित द्रव्यदृष्टिप्रधान उपदेशगंगा बहाई है; जिसमें स्नान करके भरतक्षेत्रके लाखों भव्य जीव अपना आत्महित साधनेको उत्सुक बने है; इस कारण सोनगढ़ एक 'अध्यात्म अतिशयक्षेत्र' सुवर्णपुरीके रूपमें विश्वप्रसिद्ध तीर्थधाम बन गया है। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना उदयसे सुवर्णपुरीमें स्वाध्यायमंदिर, जिनमंदिर, समवसरण मंदिर, मानस्तंभ, प्रवचनमंडप, परमागममंदिर, नंदीश्वर जिनालय आदि भव्य जिनायतनोंकी रचना हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके अनन्य भक्त, स्वानुभवविभूषित, पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको मुनि भगवंतों व आत्मज्ञानी महापुरुषोंके जीवनसे बहुत लगाव था। जिससे वे उक्त महापुरुषोंके जीवनसे अपने जीवनमें संवेग-वैराग्यभावको वृद्धिगंत करती रहती थीं। वे महिलासभामें भी सभीको आत्मज्ञानी धर्मात्मा महापुरुषों व सतीयोंके जीवनके प्रसंग बहुत आर्द्रभावसे बताती थीं। उन प्रसंगोंमेंसे कई प्रसंग ऐसे होते कि जिससे निरुपराग उपयोगरूप मोक्षमार्ग पर आत्मार्थीयोंको महत्त्व आये। ऐसे प्रसंगोचित कथाओं आधारित विविध पौराणिक चित्र उक्त आयतनोंमें उन्होंने मुख्यरूपसे अपने प्रथमानुयोगके शास्त्रज्ञानके आधारसे उत्कीर्ण एवं चित्रांकित कराए। निर्ग्रंथ मुनि भगवंतोंके दर्शन हो ऐसे ही दृश्य इन चित्रोंमें मुख्यरूपसे उन्होंने लिए हैं, जिसमें उनकी संवेगादि भावनाओंसे आयतनोंकी शोभा बढ़ गई है, एवं इन आयतनोंके दर्शन करनेवाले भाविकजनोंको विविध पुराण आधारित कथाओंसे अपनी संवेगादि भावनाओंको वृद्धि करनेका लाभ मिला है।

कुछ मुमुक्षुओंकी भावनाको लक्ष्यमें लेकर सोनगढ़से प्रकाशित हिन्दी आत्मधर्ममें पूज्य बहिनश्रीके अंतरमें वर्तती वीतरागी महापुरुषोंके प्रति अहोभाव, श्रद्धा, भक्ति आदिको देखकर, मुमुक्षुओंको अंतरमें भी ऐसे ही भाव जागृत हो इस हेतुसे इन चित्रोंके आधारसे आचार्यदेव रचित पुराणोंमेंसे बालविभागमें कथाएँ देना प्रारंभ किया गया था। भव्य साधकजीवोंकी ये कथाएँ पढ़नेसे कुछ मुमुक्षुओंने ये कथाएँ पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेकी मांग की थी। जिसके फलस्वरूप सुवर्णपुरीके स्वाध्यायमंदिरमें आलेखित सात चित्रोंकी सात कथाओंका ''जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-1'' व श्री सीमंधरस्वामी

जिनमंदिरमें अंकित पौराणिक चित्रोंके आधारसे ''जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-2'' नामक रंगीन पुस्तक प्रकाशित किये गये है। उसी भांति सुवर्णपुरीमें स्थित प्रवचनमंडपमें लगे चित्रोंमेंसे शुद्धात्मद्रव्यमें प्रतिबद्ध रहते ज्ञानी भगवंत कैसे सहज 'उपसर्ग विजयी' होते हैं, उन धर्मात्माओंके चित्रोंकी कथा संबंधित पुस्तक **''जैन पौराणिक लघु कथाएँ भाग-३''**के रूपमें प्रकाशित हो चुकी है। इस पुस्तकमें संपादित किये सात प्रवचनमंडपके चित्रके अलावा अन्य चित्रोंकी आचार्योकृत पुराण आधारित कथाएँ **'जैन पौराणिक लघुकथाएँ भाग-४'**के रूपमें प्रकाशित हो रही है।

आगे अन्य मंदिरोंमें आलेखित चित्रोंके आधारसे कथाओंके ऐसे ही पुस्तक भी प्रकाशित करनेकी श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़की भावना है।

इस पुस्तकमें आवश्यकताके अनुरूप मूल कथाकी हकीकत एवं हार्दको यथावत रखकर भाषामें सामान्य सुधार किया है।

यह पुस्तक तैयार करनेमें बा. ब्र. श्री व्रजलालभाई शाह(वढ़वाण)ने उपयोगी मार्गदर्शन दिया है, अतः हम अंतरसे उनके आभारी हैं। इस पुस्तकके सुंदर चित्र श्री जयदेवभाई अग्रावतने बनाये हैं एवं पुस्तकका मुद्रण स्मृति ऑफसेट द्वारा किया गया है। हम उन सभीके आभारी है।

इस पुस्तककी कथायें संक्षिप्त स्वरूपमें प्रवचनमंडप आदिके चित्रोंके दृश्योंकी आधारित दी गई हैं। विशेष अभ्यासके लिये जिज्ञासुओंको जैनधर्मके प्रथमानुयोगका अभ्यास करना आवश्यक है। आशा है कि मुमुक्षु समाजको यह सचित्र पुस्तक महापुरुषोंके प्रति अपनी समर्पणतामय भक्ति, आदररूप सहज जीवन गढ़नेमें व अपने संवेगादि भावोंको बलवत्तर करनेमें कार्यकारी होगा।

15वीं बाल संस्कार
अध्यात्मज्ञान शिविर
सोनगढ़-(सौराष्ट्र)
ता. 27-12-2015

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

अनुक्रमणिका

विवाहके समय वैराग्य — Page–11
पूर्वभवमें भगवान शांतिनाथके ज्ञान, तपकी परीक्षा — Page–17
सीताजीकी अग्नि परीक्षा — Page–31
भगवान महावीरको सिंहकी पर्यायमें सम्यग्दर्शन — Page–47
शिक्षाप्रद वज्रबाहुका वैराग्य — Page–53
बाहुबली मुनिन्द्रकी चक्रवर्ती भरत द्वारा पूजा — Page–59
अंजनसे निरंजन — Page–68
श्रीकण्ठ राजा — Page–76
युवराज श्रेयांसकुमार द्वारा आहारदान — Page–81
सती चन्दनबालाका वैराग्य — Page–95
शान्तिनाथ मंदिरमें लंकेश द्वारा भक्ति — Page–111
विदेहक्षेत्रस्थ भगवान श्री सीमंधरस्वामीके कल्याणक — Page–124-129
तीर्थराज सम्मेदशिखर — Page–130
श्री वासुपूज्य भगवानकी निर्वाणभूमि चंपापुरी — Page–133
भगवान श्री महावीरकी निर्वाणभूमि पावापुरी — Page–135
समवसरणमें गौतम गणधर — Page–137
प्रथम श्रुतस्कंध प्रणेता श्री धरसेनाचार्य, पुष्पदंत व भूतबलि आचार्य — Page–139
भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव — Page–141
अध्यात्मयुगस्रष्टा पूज्य गुरुदेवश्रीका अभूतपूर्व ज्ञान — Page–143
श्रीमद् राजचंद्र — Page–163

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

सुवर्णपुरीका भगवान श्री कुंदकुंद प्रवचन मंडप

पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रभावनोदय प्रारंभमें सौराष्ट्र–गुजरात तक ही सीमित था, परंतु हिन्दी 'आत्मधर्म'से तथा उसके द्वारा आकर्षित इंदौरके श्री हुकमचंदजी सेठ (वि. सं. २००१ (ई. स. १९४५) जेठ (गुज. वैशाख) कृष्णा षष्ठीको सोनगढ़ आकर अतिशय प्रभावित होनेसे, हिन्दीभाषी दिगंबर जैनोका प्रवाह सोनगढ़की ओर विशेष प्रवाहित हुआ। धीरे धीरे पूज्य गुरुदेवश्रीका पुनित प्रवाह इतना विस्तरित हुआ कि देशविदेशसे अनेक मुमुक्षु भाई–बहन, अनेक दिगंबर जैन विद्वान, त्यागीगण और ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्रीका अश्रुतपूर्व अध्यात्म उपदेशका लाभ लेने सोनगढ़ आने लगे। उत्सवके दिनोंमें स्वाध्यायमंदिर एवं जिनमंदिर छोटा पड़ने लगा। बिना कोई स्तंभका विशाल कक्ष कि जिसमें प्रवचनके समय २५०० श्रोतागण बैठ सके ऐसा विशाल, **100' x 50'**, जिसकी दिवारों पर अनेक पौराणिक सुंदर चित्रावलि और तत्त्वबोधक सैद्धान्तिक सूत्रवाक्योंसे सुशोभित ऐसे अतिभव्य ''भगवान श्री कुंदकुंद प्रवचन मंडप'' का वि. सं. २००३ (ई. स. १९४७) को निर्माण हुआ। इस प्रवचनमंडपके शिलान्यास व उद्‌घाटन प्रसंग पर सर सेठ हुकमचंदजी, इन्दौर पधारे थे। उसके शिलान्यास प्रसंग पर श्री हुकमचंदजी सेठ भीतरके उल्लासपूर्ण अहोभावसे बोले थे कि—''इस महाराजजीके उपदेशके प्रभावसे बहुत जीवोंको लाभ हुआ है। मेरा भी अहोभाग्य है कि मुझे महाराजश्रीके चरणोंकी सेवाका लाभ प्राप्त हुआ है। मेरी तो भावना है कि मेरा समाधिमरण महाराजश्रीके समीपमें हो। आपके पास मोक्ष जानेका सीधा रास्ता है।''

उद्‌घाटनके दिन पूरा प्रवचनमंडप मुमुक्षु भाई-बहिनोंसे भर गया था। उस दिनके मांगलिक प्रवचनमें पूज्यश्रीने ''निज आत्माका शुद्ध स्वभावको परद्रव्य, शरीर, राग

आदिसे भिन्न व परिपूर्ण बताते हुए उसकी दृष्टि करना ही प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म, जो जीवके जीवनमें पवित्रता (मंगल) लाता है। वह ही जीवनमें एक कर्तव्य है''—ऐसा बताया।

भगवान श्री कुंदकुंद प्रवचन मंडपके उद्घाटन प्रसंग पर पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ इन्दौरके सर सेठ हुकमचंदजी और उनके सुपुत्र राजकुमारजी

इस मंडपके उद्घाटन प्रसंग पर सेठ हुकमचंदजीके साथ पं. श्री जीवन्धरजी तथा पं. श्री देवकीनंदनजी भी आये थे। उस समय बहुत सुंदर तत्त्वचर्चा चली जिसे समझकर उन्हें बहुत ही हर्ष हुआ। अंतमें पं. देवकीनंदनजी पूज्य गुरुदेवश्री प्रति बोले कि आपने ही सत्य समझाया है, अभी तक हमारी दृष्टिमें हम शास्त्रके अर्थ बिठाते थे परंतु शास्त्रका वास्तविक अर्थ क्या है? वह आपने ही सिखाया है। हमारा श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, व्रत, त्याग आदि सभी भूलवाला था।'

उनके प्रति पूज्य गुरुदेवश्री भी कहते थे कि 'अभी तक मुझे बहुत पंडित मिले हैं, परंतु इनके (पं. श्री देवकीनन्दनजी) जैसा सरल कोई देखने नहीं मिला, सत्य बात स्वीकारनेमें उन्हें देर नहीं लगती।' इस भांति वह उद्घाटनका दिन अतिशय आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा, प्रवचन आदिसे विशेष प्रकारका रहा।

वि. सं. २००३ (ई. स. १९४७) फाल्गुन शुक्ला प्रथमाके दिन उसके उद्घाटनके प्रसंग पर वे पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावना उदयसे अति प्रभावित होकर अपना आनन्द व्यक्त करते हुए बोले : ''मेरी सर्व संपत्ति पूज्य स्वामीजीके चरणोंमें न्योछावर कर दूँ तो भी कम है—ऐसा यहाँका वातावरण देखकर मुझे उल्लास आ रहा है।''

सत्यभामाको अपना स्नानवस्त्र धोनेको कहते श्री नेमिकुमार

विवाहके समय वैराग्य

महाराज श्रीकृष्णकी एक हजार वर्षकी आयु थी, दस धनुषकी ऊँचाई थी, अतिशय सुशोभित नीलकमलके समान उनका वर्ण था, और लक्ष्मीसे आलिंगित उनका शरीर था। चक्र, शक्ति, गदा, पंचमुखी शंख, धनुष, कौस्तुभमणि और नन्दक नामक खड़ग ये सात रत्न उनके पास थे। इन सभी रत्नोंकी देव लोग रक्षा करते थे। रत्नमाला, गदा, हल और मूसल ये दैदीप्यमान चार महारत्न बलदेवके थे। रुक्मणी, सत्यभामा, सती जाम्बवन्ती, सुसीमा, लक्ष्मणा, गान्धारी, सप्तमी गौरी और प्रिया पद्मावती ये आठ देवीयाँ श्रीकृष्णकी पट्टरानियाँ थीं। उनको अन्य सोलह हजार रानियाँ थीं तथा बलदेवकी सब मिलाकर अभीष्ट सुख देनेवाली आठ हजार रानियाँ थीं। ये दोनों भाई इन रानियोंके साथ देवोंके समान सुख भोगते हुए परम प्रीतिको प्राप्त हो रहे थे। इस प्रकार पूर्व जन्ममें किए हुए अपने पुण्यकर्मके उदयसे बहुत भोगोंको भोगते हुए श्रीकृष्णका समय सुखसे व्यतीत हो रहा था।

किसी एक समय शरद् ऋतुमें मनोहर नामक सरोवरमें अन्तःपुरके सब लोग मनोहर जलकेली कर रहे थे। वहीं पर जल उछालते समय राजा समुद्रविजय व शिवादेवीके पुत्र, तथा श्रीकृष्णके चचेरेभाई भगवान नेमिनाथ और [1]सत्यभामाके बीच चतुराईसे भरा हुआ मनोहर वार्तालापयुक्त विनोद हुआ। ऐसे विनोद करते-करते स्नान समाप्त हुआ।

तब नेमिनाथने सत्यभामासे कहा, कि 'हे नीलकमल समान नेत्रोंवाली! तू मेरा यह स्नानका वस्त्र ले'।

सत्यभामाने कहा, कि 'मैं इसका क्या करूँ'?

नेमिनाथने कहा, कि 'इसे धो डाल'।

---

१. कहीं कहीं सत्यभामाके बदले जाम्बवतीका नाम आता है।

तब सत्यभामा कहने लगी, कि 'क्या आप श्रीकृष्ण हैं? वे श्रीकृष्ण, कि जिन्होंने नागशय्या पर चढकर शारंग नामका दिव्य धनुष अनायास ही चढ़ा दिया था और दिग्दिगन्तको पूर्ण करनेवाला शंख फूँका था? क्या आपमें वह साहस है, यदि नहीं है तो आप मुझसे वस्त्र धोनेकी बात क्यों कहते हो'?

नेमिनाथने कहा कि 'मैं यह कार्य अच्छी तरह कर दूँगा'।

कृष्णकी नागशैय्या पर चढ़कर शंख फूँकते श्री नेमिकुमार व
आयुधशालाकी ओर घबराते हुए आते कृष्ण व बलदेव

इतना कहकर वे नगरकी ओर चल पड़े और वह आश्चर्यपूर्ण कार्य करनेके लिए आयुधशालामें जा घुसे। वहाँ वे नागराजके महामणियोंसे सुशोभित नागशय्या पर अपनी ही शय्याके समान चढ़ गये, और बार-बार स्फालन करनेसे जिसकी डोरीरूपी लता बड़ा शब्द कर रही है, ऐसा धनुष उन्होंने चढ़ा दिया और दिशाओंके अन्तरालको रोकनेवाला शंख फूँक दिया। उस समय उन्होंने अपने-आपको महान् उन्नत समझा। जिस समय

आयुधशालामें यह सब हुआ था, उस समय श्रीकृष्ण कुसुमचित्रा नामकी सभाभूमिमें विराजमान थे। वे सहसा ही यह आश्चर्यपूर्ण काम सुनकर व्यग्र हो उठे, उनका मन अत्यन्त व्याकुल हो गया। बड़े आश्चर्यके साथ उन्होंने किंकरोंसे पूछा कि 'यह क्या है?' किंकरोंने भी अच्छी तरह पता लगाकर श्रीकृष्णसे सब बात ज्योंकी त्यों निवेदन कर दी। अतः बलदेव और कृष्ण आश्चर्यचकित हो आयुधशाला आते है।

किंकरोंके वचन सुनकर अर्ध चक्रवर्ती कृष्णने बड़ी सावधानीके साथ निर्णय करते हुए मनमें विचार किया, कि : 'आश्चर्य है! बहुत समय बाद नेमिनाथका चित्त रागसे युक्त हुआ है। अब वे नवयौवनसे सम्पन्न हुए हैं, अतः विवाहके योग्य हैं—उनका विवाह करना चाहिए'। यह सोचकर उन्होंने विचार किया, कि उग्रवंशरूपी समुद्रको बढ़ानेके लिए चन्द्रमाके समान, राजा उग्रसेनकी जयावती रानीसे उत्पन्न हुई राजमति नामकी पुत्री है, जो सर्वांग सुंदर है। विचारके बाद ही उन्होंने राजा उग्रसेनके घर स्वयं जाकर बड़े आदरसे 'आपकी पुत्री तीनलोकके नाथ (भगवान) नेमिकुमारकी प्रिया हो' इन शब्दोंमें कन्याकी याचना की और किसी शुभदिनमें उस विवाहका उत्सव करना प्रारम्भ किया।

सबसे मनोहर पाँच प्रकारके रत्नोंका विवाहमण्डप बनवाया। बीचमें एक वेदिका बनवायी गयी थी। जो नवीन मोतियोंकी सुंदर रंगावलीसे सुशोभित थी, मंगलमय सुगन्धित फूलोंके उपहार तथा वृष्टिसे मनोहर थी, उस पर सुन्दर नवीन वस्त्र ताना गया था और उसके बीचमें सुवर्णकी चौकी रखी हुई थी। उसी चौकी पर नेमिकुमारको वधू राजीमतीके साथ गीले चावलों पर बैठनेका नेग (दस्तूर) करना था।

दूसरे दिन वरके हाथमें जलधारा देनेका समय था। उस दिन अचानक श्रीकृष्णको आशंका उत्पन्न हुई, कि कहीं इन्द्रोंके द्वारा पूजनीय (विशिष्ट बलधारी) भगवान नेमिनाथ हमारा राज्य न ले लें। उसी क्षण उन्हें विचार आया कि 'ये नेमिकुमार वैराग्यका कुछ कारण पाकर भोगोंसे विरक्त हो जावेंगे।' ऐसा विचार कर वे वैराग्यका कारण जुटानेका प्रयत्न करने लगे। उनकी समझमें एक उपाय आया। भगवान नेमिनाथकी बारात निकलेगी उधर, उन्होंने बड़े-बड़े मायावी अनेक पशुओंको, एक स्थानपर इकट्ठा कर, उसके चारों ओर बाड़ लगवा दी तथा वहाँ मायावी रक्षक नियुक्त कर दिये।

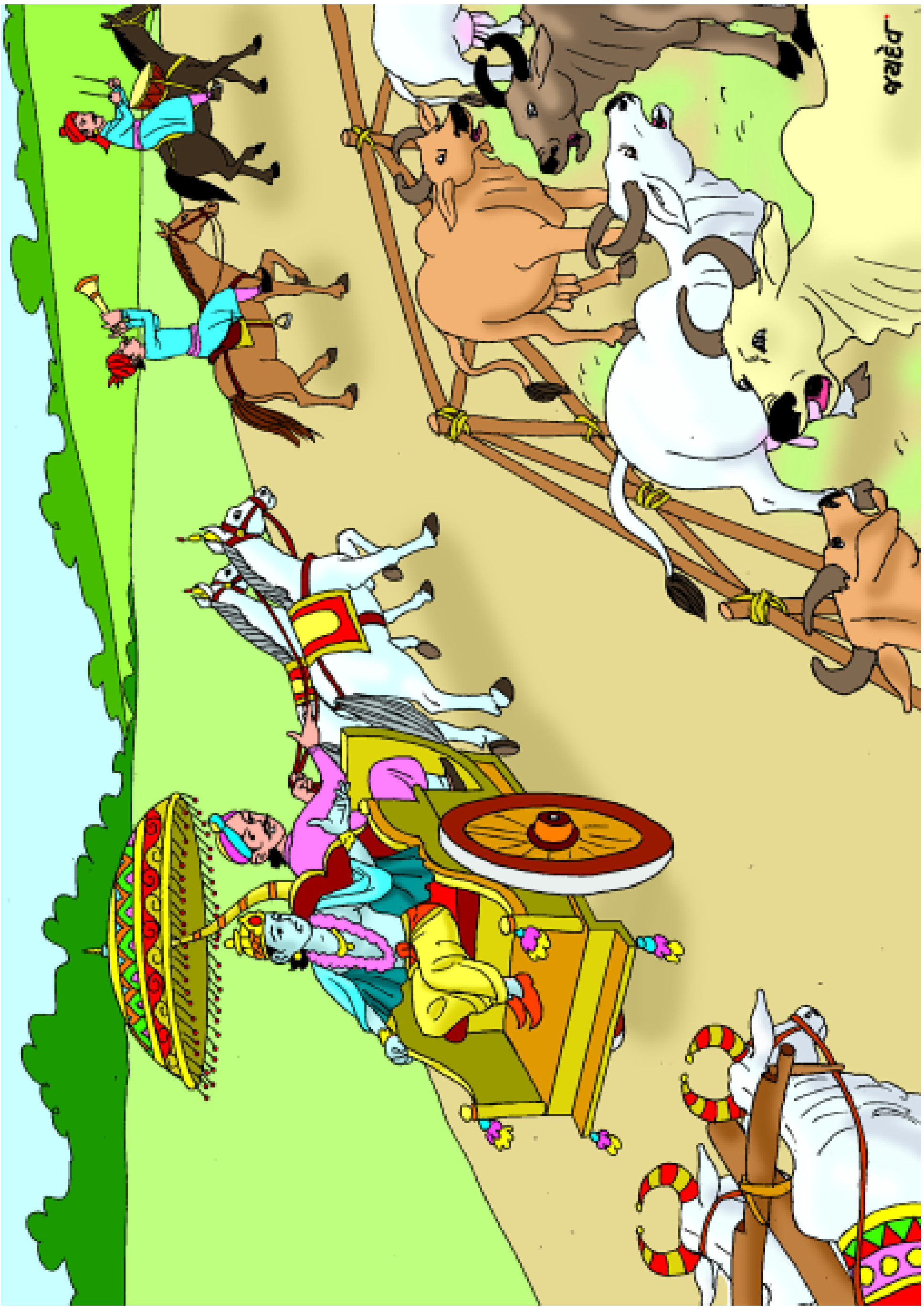

जूनागढ़की ओर जाती नेमिकुमारकी बारात, रास्तेमें पशुओंकी पुकार सुन सारथीको पूछते नेमिकुमार

तदन्तर जो नाना प्रकारके आभूषणोंसे देदीप्यमान हैं, जिनके सिरके बाल सजे हुए हैं, जो लाल कमलोंकी मालासे अलंकृत हैं, घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी हुई धूलिके द्वारा जिन्होंने दिशाओंके अग्रभाग लिप्त कर दिये हैं और जो समान अवस्थावाले, अतिशय प्रसन्न बड़े-बड़े मण्डलेश्वर राजाओंके पुत्रोंसे घिरे हुए हैं, ऐसे नयनाभिराम, आजन्म वैरागी भगवान नेमिनाथ चित्रा नामकी पालकी पर आरूढ़ होकर बारातमें निकले। वहाँ घोर करुण स्वरसे चिल्ला-चिल्लाकर इधर-उधर दौड़ते, प्यासे, दीनदृष्टिसे युक्त तथा भयसे व्याकुल हुए (मायावी) पशुओंको देख, सहज वैराग्यवंत भगवान नेमिनाथका हृदय करुणासे भर आया। उन्होंने सारथीसे रथको वापस लौटानेको कहा। स्वार्थसे भरे इस असार संसारसे मुख मोड़, वे अनित्यादि बारह भावनाओंको भाने लगे। अतिशय वैराग्यके प्रकट होनेसे उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी अनुमोदना की, अपने पूर्वभवोंका स्मरण कर वे भयसे काँप उठे। उसी समय इन्द्रोंने आकर दीक्षाकल्याणकका उत्सव मनाने देवकुरु नामक पालकी पर भगवानको सवार करके वे देवोंके साथ चल

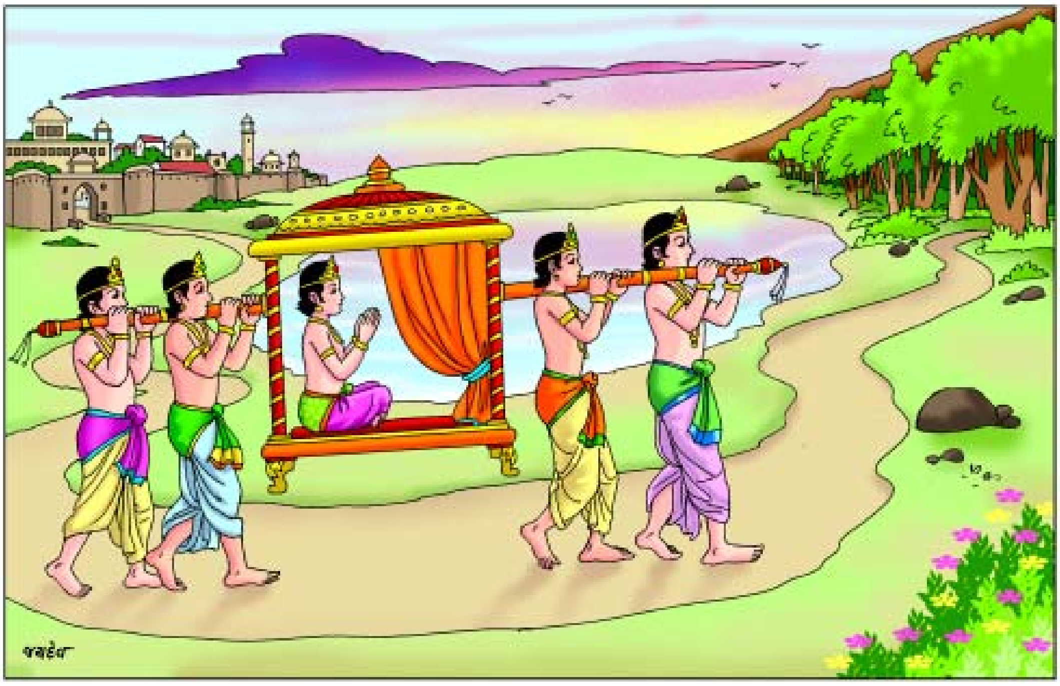

सहस्राम्रवनकी ओर दीक्षा हेतु पालकीमें जाते नेमिकुमार

पड़े। सहस्राम्रवनमें जाकर बेलाका (दो दिनके उपवासका) नियम लिया और श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन सायंकालके समय, तीनसौ वर्ष कुमार-कालका समय बीत जाने पर एक हजार राजाओंके साथ-साथ संयम धारण कर लिया। उसी समय उन्हें चौथा मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो गया और अल्पकालमें केवलज्ञान भी प्रगट होगा।

जिस प्रकार संध्या सूर्यके पीछे-पीछे अस्ताचल पर चली जाती है उसी प्रकार राजमति भी उनके पीछे-पीछे तपश्चरणके लिए चली गयी। सो ठीक ही है, क्योंकि शरीरकी बात तो दूर रही, वचनमात्रसे भी दी हुई स्वीकृति अमिट होती है। कुलीन स्त्रियोंका यही न्याय है। अन्य मनुष्य तो अपने दुःखसे भी विरक्त हुए नहीं सुने जाते, पर जो सज्जन पुरुष होते हैं, वे दूसरेके दुःखसे ही महाविभूतिका त्याग कर देते हैं। बलदेव तथा नारायण आदि मुख्य राजा और इन्द्र आदि देव, सब अनेक स्तवनों द्वारा उन भगवानकी स्तुति कर अपने-अपने स्थानपर चले गये।

परम वैरागी नेमिनाथ भगवानके चरणोंमें कोटि-कोटि वंदन।

म्हारा नेम पिया गिरनारी चाल्या

(म्हारा छैल भंवर कसूंबो पीवे)

म्हारा नेम पिया गिरनारी चाल्या, मत कोई रोक लगाज्यो;
लार लार संयम मैं लेस्युं, मत कोई प्रीत बढाज्यो। टेक.

साजन त्यागो पापयुत, देख जगत व्यवहार,
राज ताज कुल संपदा, मनमें दया विचार;
म्हारा माथा में साथणिया, कोई मत सिंदूर लगाज्यो। १.

भोग रोगकी खान है, भोग नरक को द्वार,
जो जीत्यो इह भोग नें, तिर गयो भवदधि पार;
ओ मन भोली अनजान, जोग की रीत निभाज्यो। २.

धन्य धन्य जिन जोग ले, द्वादशांग तप धार,
कर्म काट शिवपुर गये, नमों जगता हितकार;
यो नरभव को 'सौभाग्य' सजनी तप कर सफल बनाज्यो। ३.

पूर्व भवमें भगवान शान्तिनाथके ज्ञान, तपकी परीक्षा

(भगवान शांतिनाथके पूर्वभवमेंसे पूर्व पाँचवे भवमें ज्ञानकी व तीसरे भवमें तपकी परीक्षाकी यह कथा है)

भगवान शांतिनाथ पूर्वभवमें बलदेव व उनके भाई नारायण थे उनकी भवावली

	भगवान शांतिनाथकी भवावली	नारायणकी भवावली
७	अपराजित (बलदेव)	अनंतवीर्य (नारायण)
	मुनि होकर संयम धारण	
६	अच्युत स्वर्गका इन्द्र	रत्नप्रभा पृथ्वी (नारकी)
		यहाँ सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है।
		मेघनाद विद्याधर
		(मुनिराज होकर संयम धारण)
		अच्युत स्वर्गका प्रतीन्द्र
५	राजा क्षेमंकरका पुत्र राजा वज्रायुध	राजा वज्रायुधका पुत्र सहस्त्रायुध
	ग्रैवेयक	अहमिन्द्र
३	तीर्थंकर राजा घनरथका पुत्र मेघरथ	तीर्थंकर राजा धनरथका दूसरा पुत्र दृढरथ
२	अहमिन्द्र	अहमिन्द्र
१	शांतिनाथ भगवान	पुरुषका भव और मोक्ष

अर्द्धचक्री–नारायण अनन्तवीर्य जिसपर चमर ढुल रहे हैं, ऐसे सिंहासन पर बैठे हुए थे। वे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे; मानो छह खण्डोंसे सुशोभित पूर्ण चक्रवर्ती

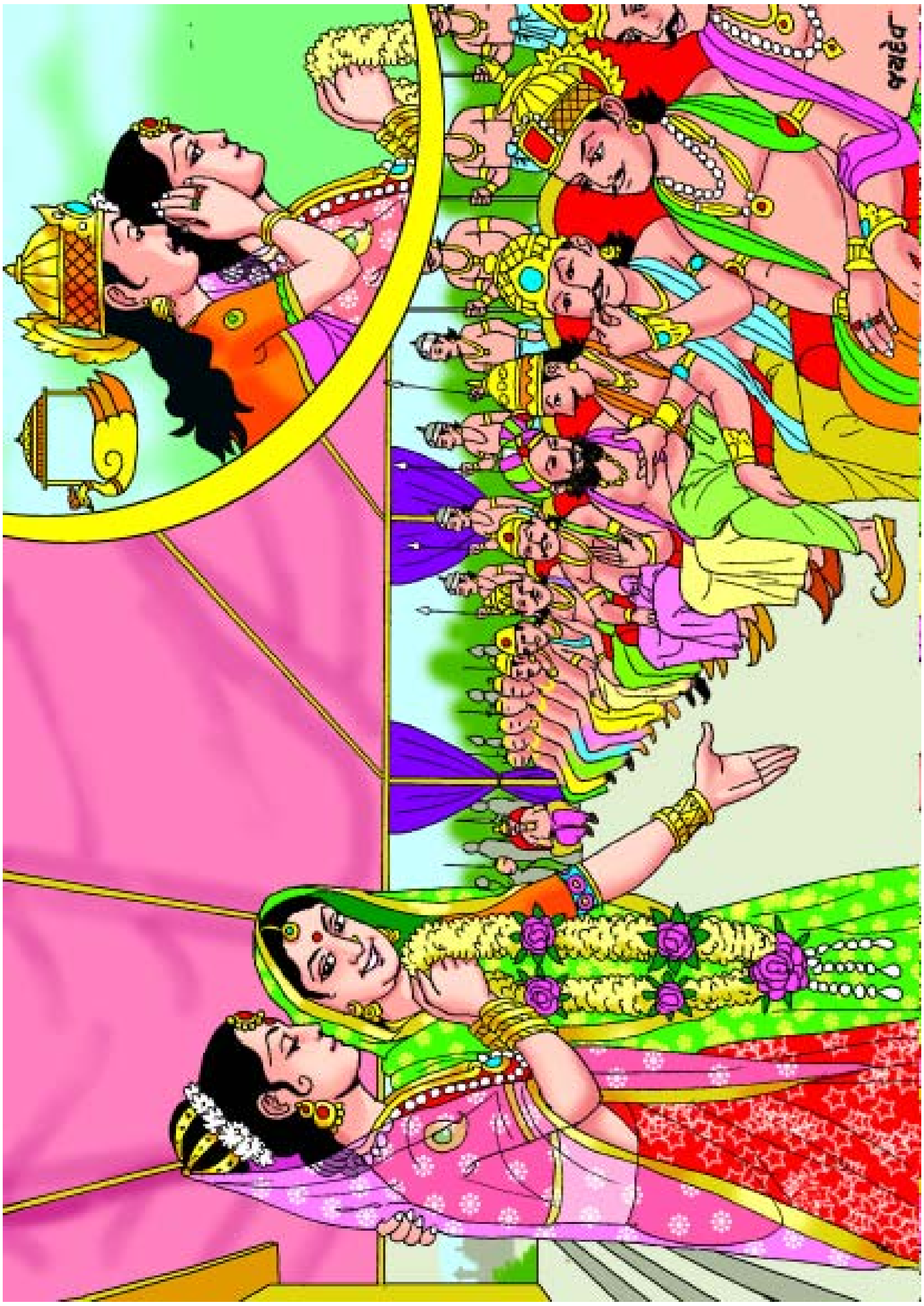

स्वयंवर मंडपमें जाती हुई अपराजित(बलदेव)की पुत्री, पूर्वभवकी सखीका आकर पुत्रीको संबोधन

ही हो। इसी प्रकार बलभद्र अपराजित (शान्तिनाथ भगवानका पूर्व सातवाँ भव)भी अपने योग्य रत्न आदिका स्वामी हुआ था और बलभद्रका पद प्राप्त कर प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता रहता था। दोनों भाईयोंका स्नेह दूसरे भवोंसे सम्बन्ध होनेके कारण निरन्तर बढ़ता रहता था। ऐसे उन दोनों भाईयोंका समय सुंदरतया व्यतीत हो रहा था। बलभद्रको विजया रानीसे सुमति नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। वह शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी रेखाओंसे उत्पन्न, चाँदनीके समान सबको प्रसन्न करती थी। वह कन्या प्रतिदिन अपनी वृद्धि करती थी और आह्लादकारी गुणोंके द्वारा माता-पिताके, पृथ्वीमण्डलमें सभी कुलोंके प्रेमपात्र थी।

एक दिन राजा अपराजितने दमवर नामक चारणऋद्धिधारी मुनिको आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। उसी समय उन्होंने अपनी पुत्रीको देखा और विचार किया, कि यह न केवल रूपसे ही विभूषित है, किन्तु यौवनसे भी विभूषित हो गई है। इस समय यह कन्या कालदेवताका (अपने भाग्यका) आश्चर्य पाकर वरकी प्रार्थना कर रही है अर्थात् विवाहके योग्य हो गई है। ऐसा विचार कर उन दोनों भाईयोंने स्वयंवरकी घोषणा सबको सुनवायी और स्वयंवरशाला बनवाकर उसमें अच्छे-अच्छे राजाओंका प्रवेश कराया। पुत्रीको रथपर बैठाकर स्वयंवरशालामें भेजा और आप दोनों भाई भी वहीं बैठ गये। कुछ समय बाद एक देवी विमानमें बैठकर आकाशमार्गसे आयी और सुमति कन्यासे कहने लगी।

क्यों तुझे याद है? हम दोनों कन्याएँ स्वर्गमें रहा करती थीं। उस समय हम दोनोंके बीच यह प्रतिज्ञा हुई थी, कि जो पृथ्वी पर पहले अवतार लेगी उसे दूसरी कन्या समझायेगी। मैं अपने दोनोंके पूर्वभवोंका सम्बन्ध कहती हूँ। तुम चित्त स्थिर कर सुनो।

पुष्करद्वीप सम्बन्धि नन्दनपुर नामक नगरमें वय और पराक्रमसे सुशोभित एक अमितविक्रम नामका राजा राज्य करता था। उसकी आनन्दमती नामकी रानीसे हम दोनों धनश्री तथा अनन्तश्री नामकी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई थीं। किसी एक दिन हम दोनोंने सिद्धकूटमें विराजमान नन्दन नामके मुनिराजसे धर्मका स्वरूप सुना, व्रत ग्रहण किये तथा सत्य समझके साथ-साथ अनेक उपवास किये।

(१) बलदेवकी पुत्रीको पूर्वभवमें सखीके साथ देख विद्याधरका मोहित होना और
(२) दोनोंको जंगलमें छोडना, जंगलमें दोनोंका संन्यासमरण

एक दिन त्रिपुरनगरका स्वामी वज्राङ्गद विद्याधर अपनी वज्रमालिनी स्त्रीके साथ मनोहर नामक वनमें जा रहा था, कि वह हम दोनोंको देखकर आसक्त हो गया। वह उसी समय लौटा और अपनी स्त्रीको अपनी नगरीमें भेजकर शीघ्र ही वापस आ गया। वह हम दोनोंको पकड़कर शीघ्र ही ले जाना चाहता था, कि उधरसे उसका अभिप्राय जाननेवाली वज्रमालिनी आ धमकी। उसे दूरसे ही आती देख वज्राङ्गद डर गया। अतः वह हम दोनोंको छोड़कर अपने नगरकी ओर चला गया। हम दोनोंने उसी वनमें संन्यासमरण किया। जिससे शुद्ध बुद्धिको धारण करनेवाली मैं तो व्रत और उपवासके पुण्यसे सौधर्मेन्द्रकी नवमिका नामकी देवी हुई और तू कुबेरकी रति नामकी देवी हुई।

एक बार हम दोनों परस्पर मिलकर नन्दीश्वर द्वीपमें महामह यज्ञ (पूजा) देखनेके लिए गयीं थी। वहाँसे लौटकर मेरुपर्वतके निकटवर्ती जन्तुरहित वनमें विराजमान धृतिषेण नामक चारणमुनिराजके पास पहुँची थी और उनसे हम दोनोंने यह प्रश्न किया था, कि हे भगवन्! हम दोनोंकी मुक्ति कब होगी? हमारा प्रश्न सुननेके बाद मुनिराजने उत्तर दिया था, कि इस जन्मसे चौथे जन्ममें तुम दोनोंकी अवश्य ही मुक्ति होगी। हे बुद्धिमती सुमते! मैं इस कारण ही तुम्हें समझानेके लिए स्वर्गलोकसे यहाँ आयी हूँ। इस प्रकार उस देवीने कहा। उसे सुनकर सुमति अपना नाम सार्थक करती हुई पितासे आज्ञा लेकर सुव्रता नामकी आर्यिकाके पास सात सौ कन्याओंके साथ दीक्षित हो गयी। दीक्षित होकर उसने बड़ा कठिन तप किया और आयुके अन्तमें मरकर आनत नामके तेरहवें स्वर्गके विमानमें देव हुई।

इधर नारायण अनन्तवीर्य, अनेक प्रकारके सुखोंके साथ तीन खण्डका राज्य करता है और अन्तमें पापोदयसे रत्नप्रभा नामकी पहली पृथ्वीमें गये। उसके शोकसे बलभद्र अपराजित, पहले तो बहुत दुःखी हुए, फिर जब प्रबुद्ध हुए तब अनन्तसेन नामके पुत्रके लिए राज्य देकर यशोधर मुनिराजसे संयम धारण कर लिया। वे तीसरा अवधिज्ञान प्राप्त कर अत्यन्त शान्त हो गये और तीस दिनका संन्यास लेकर अच्युत स्वर्गके इन्द्र(भ. शान्तिनाथका पूर्वभव-६) हुए।

पूर्व स्नेहको प्राप्त धरणेन्द्रने नरकमें जाकर अनन्तवीर्यको समझाया, जिससे प्रतिबुद्ध होकर उसने सम्यग्दर्शनरूपी रत्न प्राप्त कर लिया। संख्यात वर्षकी आयु पूरी

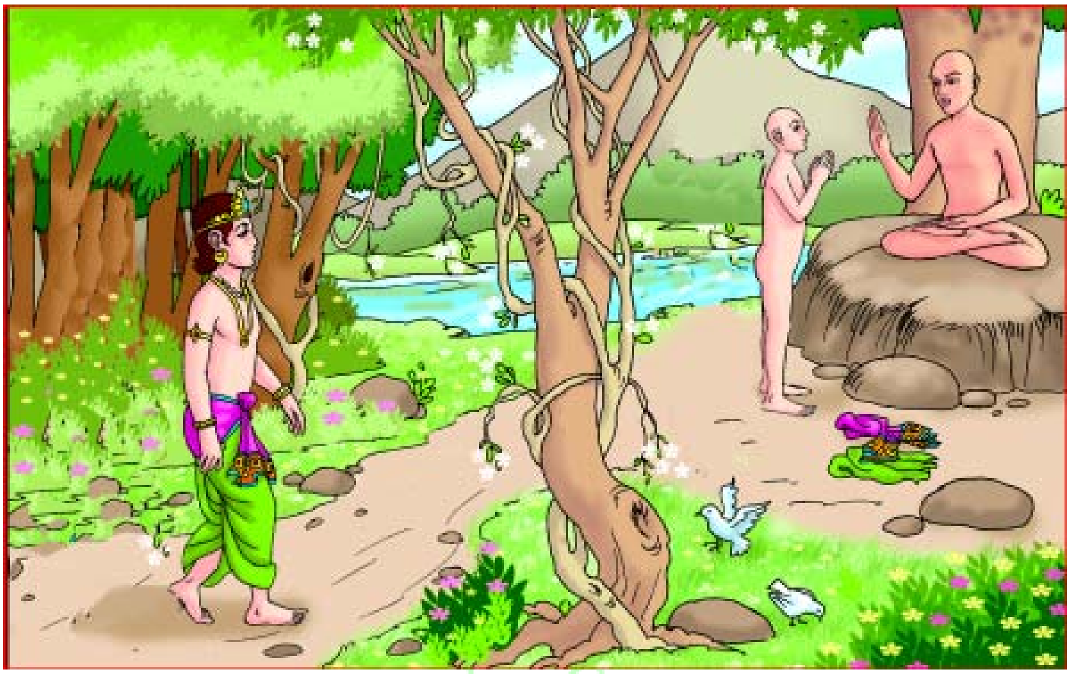

जंगलमें मेघनादकी मुनिराजके पास दीक्षा

मेघनाद पर नंदनवनमें बड़ा उपसर्ग, समाधिमरण, अच्युतस्वर्गमें प्रतीन्द्र

कर, पापका उदय कम होनेके कारण, वहाँसे निकलकर जम्बूद्वीप-सम्बन्धी भरतक्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें प्रसिद्ध गगनवल्लभ नगरके राजा मेघवाहन विद्याधरकी मेघमालिनी नामकी रानीसे मेघनाद नामका विद्याधर पुत्र हुआ। वह दोनों श्रेणियोंका आधिपत्य पाकर चिरकाल तक भोगोंको भोगता रहा।

एक दिन यह मेघनाद मेरु पर्वतके नन्दन वनमें प्रज्ञप्ति नामकी विद्या सिद्ध कर रहा था, वहाँ अपराजितके जीव अच्युतेन्द्रने उसे समझाया। जिससे उसे (इस बारेमें) बोध हुआ। उसने सुरामरगुरु नामक मुनिराजके पास जाकर दीक्षा धारण कर ली तथा उत्तम गुप्तियों और समितियोंको लेकर चिरकाल तक उनका आचरण करता रहा। एक दिन यही मुनिराज (मेघनाद) नन्दन नामक पर्वत पर प्रतिमायोग धारण कर विराजमान थे। उन पर भारी उपसर्ग होनेसे वे मुनिराज सन्यासमरण कर आयुके अन्तमें अच्युतस्वर्गमें प्रतीन्द्र हुए और इन्द्रके साथ उत्तम प्रीति रखकर प्रवीचार सुखका अनुभव करने लगे।

अपराजितका जीव जो इन्द्र हुआ था, वह पहले च्युत हुआ और जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेहक्षेत्रके रत्नसंचय नामक नगरमें राजा क्षेमंकरकी कनकचित्रा नामकी रानीसे–मेघकी बिजलीसे प्रकाशके समान–पुण्यात्मा श्रीमान् तथा बुद्धिमान् वज्रायुध नामका पुत्र(भ. शान्तिनाथका पूर्वभव-५) हुआ। जब यह उत्पन्न हुआ था, तब जन्म समय होती सभी उत्तम क्रियाएँ की गई थी।

जिस प्रकार सूर्यके महाभ्युदयको सूचित करनेवाली उषाकी लालिमा सूर्योदयके पहले ही प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार उस पुत्रके महाभ्युदयको सूचित करनेवाला, मनुष्योंका अनुराग उसके जन्मके पहले ही प्रकट हो गया था। जिस प्रकार चन्द्रमा शुक्लपक्षको पाकर कान्ति तथा चन्द्रिकासे सुशोभित होता है, उसी प्रकार वज्रायुध भी नूतन-तरुण अवस्था पाकर राज्य-लक्ष्मी तथा लक्ष्मीमती स्त्रीसे सुशोभित हो रहा था।

जिस प्रकार प्रातःकालके समय पूर्वदिशासे दैदीप्यमान सूर्यका उदय होता है, उसी प्रकार उन दोनों–वज्रायुध और लक्ष्मीमतीके सहस्रायुध नामका (अनन्तवीर्य अथवा प्रतीन्द्रका जीव) पुत्र उत्पन्न हुआ। सहस्रायुधके श्रीषेणा स्त्रीसे कनकशान्त नामका पुत्र हुआ। इस प्रकार राजा क्षेमंकर पुत्र-पौत्र आदि परिवारसे परिवृत्त होकर राज्य करते थे।

उनका प्रताप प्रतिद्वन्दीसे रहित था और अनेक राजाओंके समूह उन्हें नमस्कार करते थे। एक दिन वे सिंहासन पर विराजमान थे, उनपर चमर ढोले जा रहे थे। ठीक उसी समय देवोंकी सभामें ऐशान स्वर्गके इन्द्रने वज्रायुधकी इस प्रकार स्तुति की–'इस समय वज्रायुध महासम्यग्दर्शनकी अधिकतासे अत्यन्त पुण्यवान् है।' विचित्रचूल नामका देव इस स्तुतिको नहीं सह सका अतः परीक्षा करनेके लिए वज्रायुधकी ओर चला सो ठीक ही है, क्योंकि दुष्ट मनुष्य दूसरेकी स्तुतिको सहन नहीं कर सकता।

उसने रूप बदलकर राजाके यथायोग्य दर्शन किये और शास्त्रार्थ करनेकी खुजलीसे सौत्रान्तिक मत(प्रवर्तमान बौद्धमत जैसी मान्यता)का आश्रय ले इस प्रकार कहा। हे राजन्! आप जीव आदि पदार्थोंके विचार करनेमें विद्वान हैं। इसलिए कहिए, कि–

पर्याय पर्यायीसे भिन्न है या अभिन्न? यदि पर्यायीसे पर्याय भिन्न है तो शून्यताकी प्राप्ति होती है, क्योंकि दोनोंका अलग-अलग कोई आधार नहीं है और 'यह पर्याय है' और 'यह पर्यायी है', 'यह इसकी पर्याय है' इस प्रकारका व्यवहार भी नहीं बन सकता। अतः यह पक्ष संगत नहीं बैठता।

यदि पर्यायी और पर्यायको एक माना जावे, तो यह मानना भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि परस्पर विरोधी 'एकपना और अनेकपना'की भांति दोनों साथ नहीं रह सकते। 'यदि द्रव्य एक है और पर्यायें बहुत हैं' ऐसा आपका मत है तो 'दोनों एक स्वरूप भी है' इस प्रतिज्ञाका (–आपकी स्वयम्‌की मान्यताका–) भंग हो जावेगा।

यदि द्रव्य और पर्याय दोनोंको नित्य मानेंगे, तो फिर नित्य होनेके कारण पुण्य-पापरूप कर्मोका उदय नहीं हो सकेगा। कर्मोंके उदयके बिना बन्धके कारण रागद्वेष आदि परिणाम नहीं हो सकेंगे। उनके अभावमें कर्मोका बन्ध नहीं हो सकेगा और जब बन्ध नहीं होगा तब मोक्षके अभावको कौन रोक सकेगा?

यदि कुछ उपाय न देख पर्याय-पर्यायीको क्षणिक मानना स्वीकृत करते हैं, तो आपके गृहीत पक्षका त्याग और हमारे पक्षकी सिद्धि हो जावेगी। इसलिए हे भद्र! आपका मत क्षणिकवादके द्वारा कल्पित है तथा कल्पना मात्र है। ऐसा सिद्ध होता है। अतः इसमें आप व्यर्थ परिश्रम न करें।

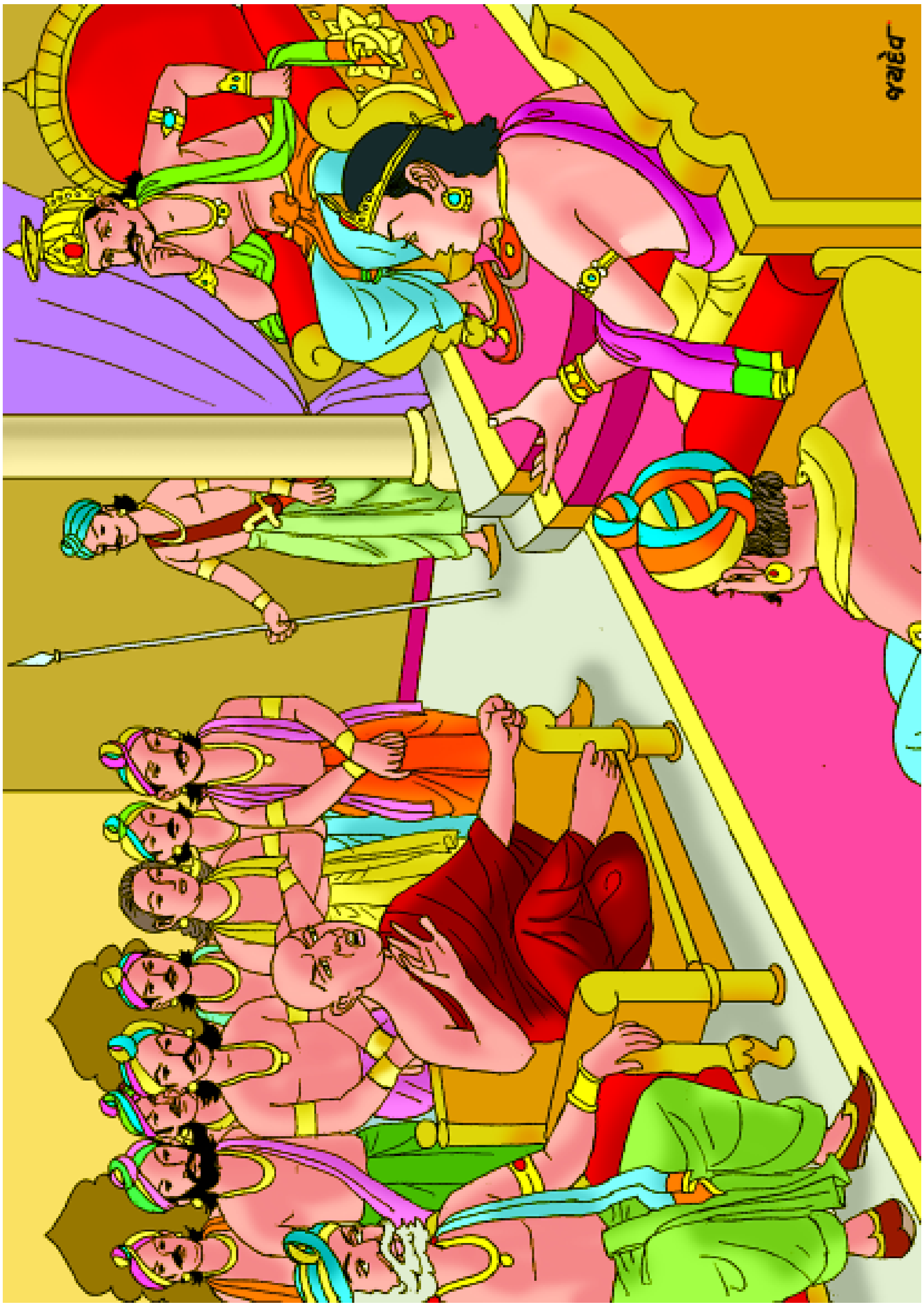

राज्यसभामें बौद्धगुरुके वेषमें आये देवके साथ वज्रायुधकी ज्ञानपरीक्षा

इस प्रकार उसका कथन सुनकर विद्वान वज्रायुध (शान्तिनाथ भगवानका पूर्व पाँचवाँ भव) कहने लगे, कि 'हे क्षणिकवादी! चित्तको ऊँचा रखकर तथा माध्यस्थ भावको प्राप्त होकर सुन। अपने द्वारा किये कर्म और उसके फलको भोगनेरूप व्यवहारसे, विरोध रखनेवाले क्षणिकेकान्तरूपी मिथ्यामतको लेकर, तूने जो दोष बतलाया है। वह जिनेन्द्र भगवानके मुखरूपी चन्द्रमासे निकले हुए स्याद्वादरूपी अमृतका पान करनेवाले जैनियोंको कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकता, क्योंकि धर्म और धर्मीमें अर्थात् गुण और गुणीमें–संज्ञा-लक्षण, प्रयोजन आदि चिह्नोंका भेद होनेसे भिन्नता है परन्तु 'गुण-गुणी कभी अलग नहीं हो सकते' इस एकत्वनयका अवलम्बन लेनेसे दोनोंमें अभिन्नता–एकता है अर्थात्–द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा गुण और गुणी अथवा पर्याय और पर्यायीमें अभेद है–एकता है; परन्तु पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा दोनोंमें भेद है, अनेकता है।

इसी भांति सौत्रान्तिक मतीके पर्याय-पर्यायीमें 'भिन्नता-अभिन्नता', 'नित्यता-अनित्यता', 'एकता-अनेकता'की स्पष्टता नय विवक्षा द्वारा करते हुए वज्रायुधने स्याद्वादमतकी अति उज्ज्वलता प्रकट की।

ऐसे अनेक प्रश्न क्षणिकवादका पक्ष लेकर उनसे (वज्रायुधसे) किये सभी प्रश्नोंका सप्रमाण उत्तर मिलनेसे वह देव वज्रायुधके ज्ञानसे व उनकी दृढ़तासे अति प्रसन्न हुआ।

इस प्रकार उस देवने विचार किया, कि मेरे वचन वज्रायुधके वचनरूपी वज्रसे खण्ड-खण्ड हो गये हैं। तब उसका समस्त मान दूर हो गया। उसी समय स्वभावकी दृष्टि कालादि लब्धियोंकी अनुकूलतासे होते उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। उसने वज्रायुध राजाकी पूजा की, अपने आनेका वृत्तान्त कहा और फिर वह स्वर्ग चला गया।

राजा वज्रायुध सम्यक्त्व सह संयम पालन करते-करते मरणको प्राप्त होनेसे वे (भगवान शांतिनाथका पूर्व चौथा भव) मरकर ग्रैवेयकमें जन्में।

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें पुष्कलावती नामका देश है। उसकी पुण्डरीकिणी नामकी नगरीमें राजा घनरथ राज्य करते थे। उसकी मनोहरा नामकी सुन्दर रानी थी। वज्रायुधका जीव ग्रैवेयकसे च्युत होकर उन्हीं दोनोंके मेघरथ नामका पुत्र (शान्तिनाथ भगवानका पूर्व तीसरा भव) हुआ। उसके जन्मके पहले गर्भाधान आदि क्रियाएँ हुई

थीं। उन्हीं राजा घनरथकी दूसरी रानी मनोरमा थी। दूसरा अहमिन्द्र (वज्रायुधका पुत्र सहस्रायुधका जीव) उसीके गर्भसे दृढरथ नामका पुत्र हुआ। ये दोनों ही पुत्र चन्द्र और सूर्यके समान जान पड़ते थे। उन दोनोंमें विनय, प्रभाव, क्षमा, सत्य, त्याग आदि अनेक स्थायी गुण प्रकट हुए थे।

वे घनरथ राजा अपने पुत्र-पौत्रके साथ दरबारमें बैठे थे। उसी समय दोनों पुत्रोंकी रानीयोंकी दासीयाँ मुर्गोंकी हिंसात्मक लड़ाई दिखा रही थी, तब मेघरथकुमारने उन्हें उनके पूर्व भव बताए। वे दोनों मुर्गोंके जीव मेघरथकुमारसे अपने पूर्वभव जानकर आपसी वैर भूलकर वैराग्यभावना भाते हुए आयुष्यके अन्तमें भूतारण्य व देवारण्य नामक वनमें ताम्रचूल व कनकचूल नामक भूत जातिके देव हुए। उन्होंने यह फल अपने पूर्वभवके वैराग्यका कारण जान व इस वैराग्यके कारण मेघरथकुमारको जानकर उनकी पूजा की थी और उन्हें मानुषोत्तर पर्वत अन्तर्गत समस्त जिनमंदिरोंके दर्शन कराकर संसारका वैभव दिखाया था।

(यह सारी कथा लघु पौराणिक कथा भाग-२ कथा नं. १ पर देखें।)

इस प्रकार मेघरथकुमार राजाके जीवनमें ज्ञान, शील, दया आदिकी उत्तमताके कई प्रसंग हुए, कि जिससे वैमानिक देवोंके बीच इन्द्रकी सभाओमें स्वयं इन्द्र द्वारा उनकी भक्ति व स्तवना भी की गई। देव, देवीयाँ इस बातकी परीक्षा करने वैविध्यरूप लेकर परीक्षा करते थे जैसे शान्तिनाथ भगवानके पूर्व पाँचवे भवमें ज्ञानकी निर्मलता व दृढ़ताकी परीक्षा की व उसमें शांतिनाथ भगवानके जीवको सफल पाया, उसी ही भाँति शान्तिनाथ भगवानके जीवको उस मेघकुमारके भवमें भी देव-देवी द्वारा कई प्रसंग बने जिसमें उन्हें वैसा ही पाकर वे उनकी प्रशंसा, भक्ति, पूजा आदि करके अपने स्थान पर चले जाते थे।

एक दिन राजा मेघरथ नन्दीश्वर पर्वमें महापूजा कर और उपवास धारण कर रात्रिके समय प्रतिमायोग द्वारा ध्यान करते हुए सुमेरु पर्वतके समान विराजमान थे। उसी समय देवोंकी सभामें ईशानेन्द्रने यह सब जानकर बड़े हर्षसे कहा, कि 'अहा! आश्चर्य है, आज संसारमें तू ही शुद्ध सम्यग्दृष्टि है और तू ही धीर-वीर है'। उस तरह अपने-आप सहजभावसे की हुई स्तुतिको सुनकर देवोंने ईशानेन्द्रसे पूछा, कि 'आपने किस सज्जनकी स्तुति की है'? उत्तरमें इन्द्र देवोंसे इस प्रकार कहने लगा,

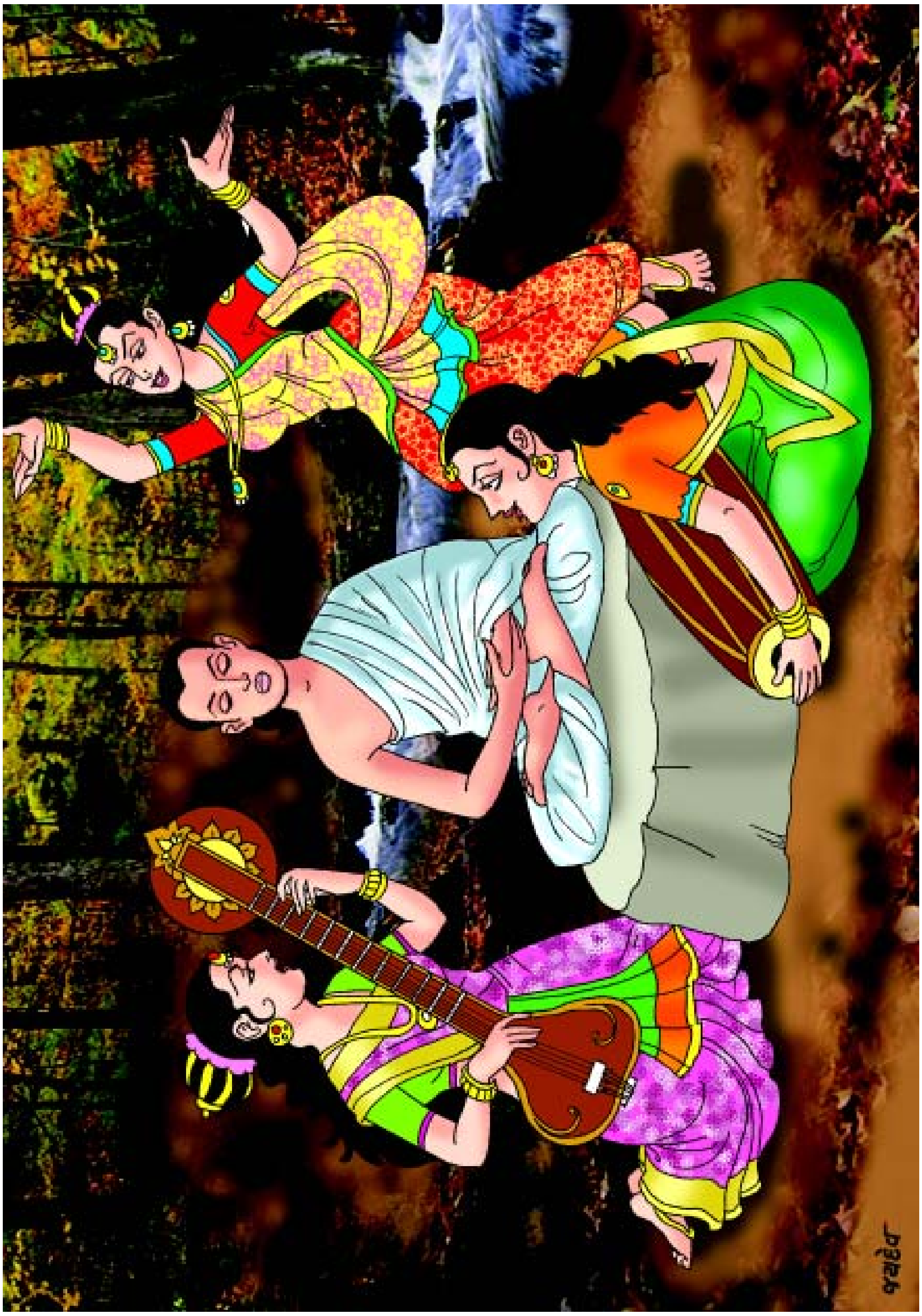

अष्टाह्निकामें मेघरथकुमारका अनशनपूर्वक रात्रीके समय प्रतिमायोगमें ध्यान,
देवीयाँ रूप बदलकर उनके तपकी परीक्षा करती हुई

कि राजाओंमें अग्रणी मेघरथ अत्यन्त धीर-वीर हैं, शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं, आज वे प्रतिमायोग धारण कर बैठे हैं। मैंने उन्हींकी भक्तिसे स्तुति की है।

ईशानेन्द्रकी उक्त बातको सुनकर उसकी परीक्षा करनेमें अत्यन्त चतुर अतिरूपा और सुरूपा नामकी दो देवियाँ राजा मेघरथके पास आयीं और विलास, विभ्रम, हाव-भाव, गीत, बात-चीत तथा कामके उन्मादको बढ़ानेवाले विविध कृत्योंसे उनके मनोबलको विचलित करनेका प्रयत्न करने लगीं, परन्तु जिस प्रकार बिजलीरूपी लता सुमेरु पर्वतको विचलित नहीं कर सकती; उसी प्रकार वे देवियाँ राजा मेघरथके मनोबलको विचलित नहीं कर सकी। अन्तमें वे 'ईशानेन्द्रके द्वारा कहा हुआ सच है' इस प्रकार स्तुति कर स्वर्ग चली गयीं।

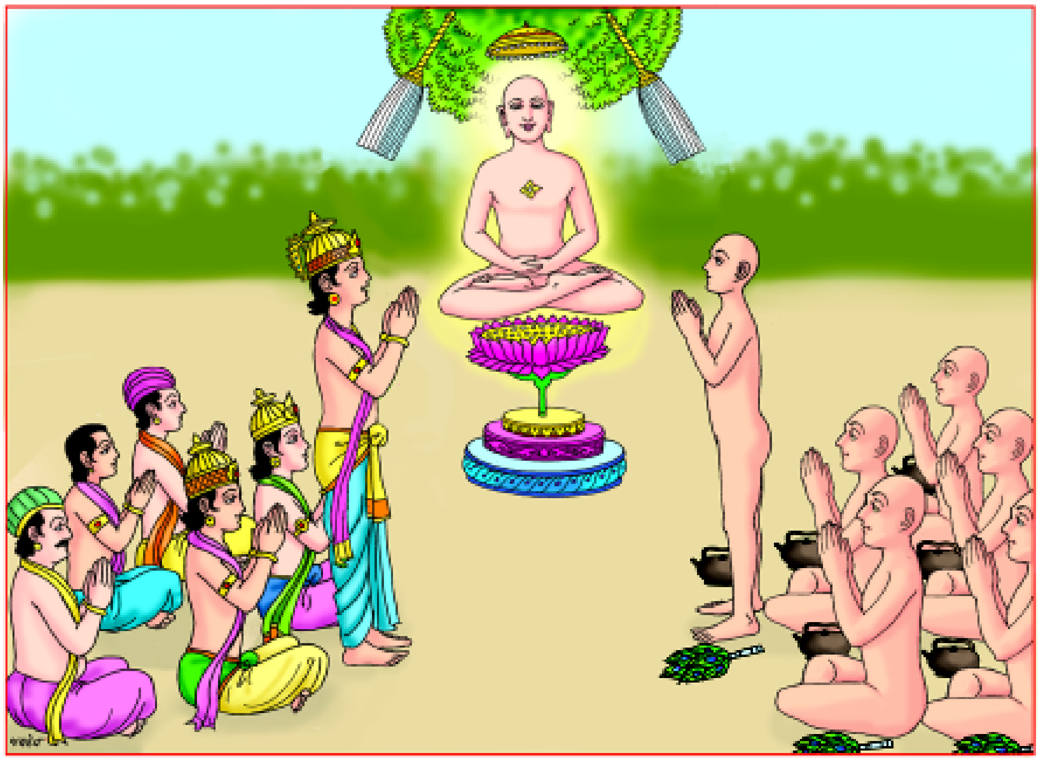

घनरथ तीर्थंकरके समवसरणमें मेघरथकुमार आदि सात हजार राजाओंकी दीक्षा

कई वर्षों बाद राजा मेघरथकुमार घनरथ तीर्थंकरके समवसरणमें भाई दृढरथ सह अन्य सात हजार राजाओंके साथ भगवती जिनदीक्षा धारण कर शुद्ध सम्यग्दर्शन सह शुद्ध रत्नत्रय स्वरूप जिनलिंग पालन करते हुए उनमेंसे मेघरथकुमार षोडशकारण भावना

भाते हुए तीर्थंकर प्रकृतिको प्राप्त करते हैं, कि जिससे तीनों लोकोंमें क्षोभ हो जाता है।

वे मुनिराज क्रम-क्रमसे अनेक देशोंमें विहार करते हुए श्रीपुर नामक नगरमें गये। वहाँके राजा श्रीषेणने उन्हें योग्य विधिसे आहार दिया। इसके पश्चात् नन्दपुर नगरमें नन्दन नामके भक्तिवान राजाने आहार दिया और तदनन्तर पुण्डरीकिणी नगरीमें निर्मल सम्यग्दृष्टि सिंहसेन राजाने आहार कराया। वे मुनिराज ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपकी अनेक पर्यायोंको अच्छी तरह बढ़ा रहे थे। उन्हें दान देकर उक्त सभी राजाओंने पंचाश्चर्य प्राप्त किये। अत्यन्त धीर-वीर मुनिन्द्र मेघरथने दृढ़रथके साथ-साथ नभस्तिलक नामक पर्वत पर श्रेष्ठ संयम धारण कर एक महिने तक प्रायोपगमन संन्यास धारण किया और अन्तमें शान्त परिणामोंसे शरीर छोड़कर अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

वहाँ इन दोनोंकी तैंतीस सागरकी आयु थी। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल एक हाथ ऊँचा शरीर था, शुक्ल लेश्या थी, वे साढ़े सोलह माहमें एक बार श्वास लेते थे, तैंतीस हजार वर्ष बाद एक बार अमृतमय आहार ग्रहण करते थे, प्रवीचाररहित सुखसे युक्त थे, उनके अवधिज्ञानरूपी नेत्र लोकनाड़ीके मध्यवर्ती योग्य पदार्थोंको देखते थे, उनकी शक्ति दीप्ति तथा विक्रियाका क्षेत्र भी अवधिज्ञानके बराबर था। इस प्रकार वे वहाँ चिरकाल तक स्थित रहे। वहाँसे च्युत हो वे मनुष्य जन्म धारण कर नियमसे वे भगवान शांतिनाथ आदि मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त करेंगे।

ऐसे शान्तिनाथ भगवानके चरणोंमें कोटि कोटि वंदना।

सीताजीकी अग्नि परीक्षा

एक दिन नारदने भ्रमण करते हुए अयोध्यामें प्रवेश किया। तब उसने जनसमुहके मुखसे माता सीताको राम द्वारा वनमें भेजनेके समाचार सुने। उन्होंने यथार्थ वृत्तान्त सुनकर सीताजीका पता लगाने हेतु, रामके विश्वासपात्र सारथी कृतान्कवक्र सेनापतिसे पूछा, कि 'तू सीताको वनमें कहाँ छोड़ आया था?' तब कृतान्कवक्रने कहा, कि

कृतांक्वक्र सेनापति द्वारा सीताजीको 'सिंहनाद' नामक भयंकर अटवीमें अकेले छोड़ना

'हे भगवन्! मैं महासती सीताको स्वामीकी आज्ञानुसार सिंहनाद नामक अत्यन्त भयानक अटवीमें अकेली छोड़ आया था।' उस दिनसे नारद मनही मन सीताकी खोजमें भ्रमण करने लगे। एक दिन वनमें दो अत्यन्त सुंदर कुमारोंको वन-क्रीड़ा करते देख कौतुहलवश

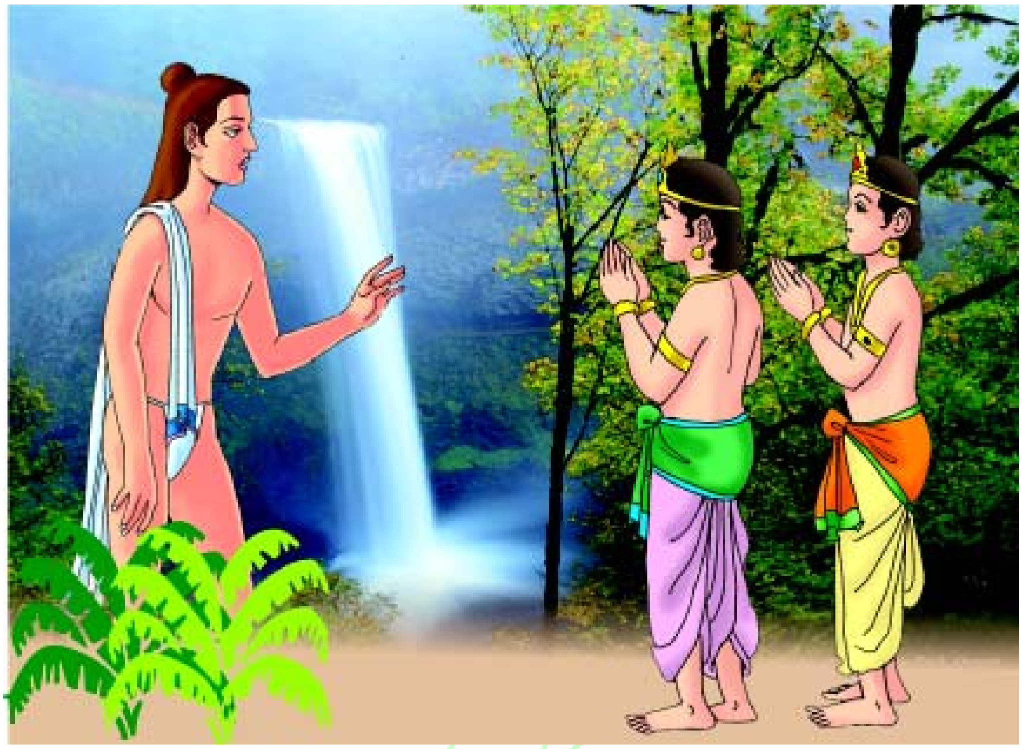

नारद द्वारा लव-कुशके द्वारा विनय करने पर
'राम-लक्ष्मण जैसी विभूति और लक्ष्मीको प्राप्त हो' ऐसा आशीर्वाद

वे उनके समीप आए। यद्यपि कुमारोंने नारदको पहले कभी नहीं देखा था। फिर भी स्वाभाविक अत्यन्त विनयी होनेके कारण, दोनों कुमारोंने खड़े होकर उनका सन्मान किया। नारद कुमारोंको अत्यन्त विनय सम्पन्न देख, बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद दिया, कि जिस प्रकार श्रीराम-लक्ष्मणके पास महाविभूति तथा लक्ष्मी है; वैसे ही तुम्हारे पास हो। उन दोनों कुमारोंके नाम [१]अंकुशकुमार व अनंगलवण थे।

नारदका विचित्र आशीर्वाद सुन दोनों कुमारोंने विस्मय सहित पूछा कि 'हे देव! राम-लक्ष्मण कौन हैं? वे किस कुलमें उत्पन्न हुए और उनमें कौनसे विशेष गुण हैं?' नारद क्षणेक मौन रहकर कहने लगे, कि 'हे कुमारों! यदि कोई अपनी भुजाओंसे पर्वत भी उखाड़े अथवा तैरकर समुद्रको लांधे, तो भी वह उनके गुणों तथा पराक्रमका वर्णन नहीं कर सकता।' इतना कह नारदने राम-लक्ष्मण और सीताका विस्तारसे परिचय दिया। उनके वन-गमन, सीता हरण, रावण वध, लंका विजय, अयोध्या-आगमन तथा प्रजा-हितमें सीताका त्याग तक समस्त कथा विस्तारपूर्वक कुमारोंको सुनाई।

१. अपरनाम : मदनांकुश

समस्त कथा सुनकर अंकुशकुमार बोले कि 'हे प्रभो! रामने जानकीको क्यों त्यागा?' नारद अश्रुपात करते हुए बोले, कि 'हे कुमार! यद्यपि वह महासती, निर्दोष, शीलवती एवम् पतिव्रता थीं; फिर भी पूर्वोपार्जित अशुभोदयसे मूढ़ लोगोंके लोकोपवादसे श्रीरामने दुःखित हो, उनको भयानक वनमें गर्भावस्था होने पर भी त्याग दिया।' मदनांकुशने कहा, कि 'हे स्वामी! ऐसी अवस्थामें रामने सीताको भयानक वनमें अकेली छोड़कर भला नहीं किया। यह कुलीनोंकी रीति नहीं, लोकापवाद निर्णयके अनेक उपाय हैं। ऐसा अविवेकका कार्य ज्ञानवान कदापि नहीं करते।' कुमार अंकुशने तो मात्र इतना कहा, परंतु अनंगलवणके शरीरमें तो क्रोध भड़क उठा। वह बोला, कि 'यहाँसे अयोध्या कितनी दूर है?' नारदने कहा, कि 'यहाँसे एकसौ आठ योजन दूर श्रीराम-लक्ष्मण बिराजमान हैं।' तब दोनों कुमार निर्भय होकर बोले, कि 'हम श्रीराम-लक्ष्मण पर अवश्य चढाई करेंगे। इस पृथ्वी पर ऐसा कौन है? जिसकी हमारे आगे प्रबलता हो?'

दोनों कुमार वनक्रीड़ा करके नगरमें आए और राजा वज्रजंघसे वे कहने लगे, कि 'हे मामा! सिन्धु, मगध, अङ्ग, कलिङ्ग आदि देशोंके समस्त राजाओंको शीघ्र आज्ञापत्र भेजो, ताकि वे युद्धके लिए स्वसैन्यके साथ तैयार होकर पुण्डरीकपुर आवें। हम अयोध्याके राजा राम-लक्ष्मण पर शीघ्र ही चढाई करेंगे। समस्त शूर-सामन्तोंको आज्ञा दीजिये, कि वे युद्धके लिए अयोध्या जानेको तैयार हों।'

सीता अपने पुत्रों द्वारा अयोध्या पर चढ़ाई होनेका वृत्तांत सुन अत्यन्त खेद-खिन्न हो रुदन करने लगी। तथा दूसरी ओर नारदसे सीता कहने लगीं, कि 'अहो! यह आपने क्या अयोग्य कार्य आरम्भा? कुमारोंको युद्धार्थ उत्तेजित कर पिता-पुत्रोंके विरोधका उद्यम क्यों किया? अब किसी भी प्रकार इस विरोधका शीघ्र निवारण कीजिए।' नारदने कहा, कि मैं तो ऐसा नहीं जानता था। कुमारोंने विनययुक्त मेरा अभिवादन किया। मैंने अनजाने सहज ही आशीर्वाद दिया, कि तुम राम-लक्ष्मणके समान विभूति एवं लक्ष्मी सम्पन्न होओ। इस आशीर्वादको सुनकर कुमारोंने मुझसे राम-लक्ष्मणका परिचय पूछा। मैंने उन्हें श्रीराम-लक्ष्मणका समस्त परिचय दिया। इस पर दोनों कुमार अयोध्या पर चढाई करनेको तत्पर हुए। अब तुम भय चिन्ता मत करो। सब अच्छा ही होगा।

□सीता माताका रुदन देख लव-कुशके द्वारा रोनेका कारण पूछना

दोनों भाई माता (सीता)को अत्यन्त व्याकुल और रुदन करते देख बोले, कि 'हे माता! आप रुदन क्यों करतीं हैं? किसने आपकी अवहेलना की है? उस दुष्टका शीघ्र नाम दीजिये। हम उनका शीघ्र ही नाश करेंगे। ऐसा कौन है? जो सर्पकी जिह्वाओंसे क्रीड़ा करे? कृपा कर रुदनका कारण हमसे कहो।' पुत्रोंकी विनती सुनकर सीता अश्रुपातकर बोली, 'हे पुत्रों! किसीने कोप नहीं किया, न मुझे कोई दुःख पहुँचाया। तुम्हारा पितासे युद्धका आरम्भ सुन, मुझे बहुत दुःख हुआ है।' पुत्रोंने कहा, कि 'हे माता हमारा पिता कौन है?' तब सीताने जैसा नारदने समस्त वृत्तान्त कहा था, वैसा ज्योंका त्यों उन्हें सुनाकर कहा, कि जब तुम मेरे गर्भमें थे, तब तुम्हारे पिताने मुझे लोकापवादके भयसे सिंहनाद नामक भयानक अटवीमें अकेली छुड़वा दिया था। मेरा करुणाजनक रुदन सुन, राजा वज्रजंघ (जिसे तुम मामा कहते हो) मुझे अपनी बड़ी बहिन मान पुण्डरीकपुर ले आया और मुझे बहुत सन्मानपूर्वक सुखसे अपने पास रक्खा। मैंने भी उसे अपने भाई भामंडलके समान माना। यहाँ तुम्हारा जन्म शिक्षा-दीक्षा और सन्मान हुआ। तुम दोनों अयोध्याके महाराजाधिराज रघुकुल-तिलक

श्री रामचन्द्रके पुत्र हो। उनका हिमाचलसे लेकर समुद्र तक राज्य है। उनके छोटे भाईका नाम लक्ष्मण है, जो अत्यन्त बलवान तथा महापराक्रमी है।'

माताके मुखसे यह वृत्तान्त सुन दोनों भाई अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले, कि 'हे माता! हमारे पिता महाधनुर्धारी, संसार प्रसिद्ध लक्ष्मीवान एवम् विशाल कीर्तिवान हैं, परन्तु आश्चर्य है, कि उन्होंने तुम्हें भयानक वनमें अकेली छोड़ी। हमारी बुद्धि अनुसार उन्होंने यह भला नहीं किया। अतएव हम अयोध्या जाकर उनका मानभंग अवश्य करेंगे। इसमें तुम विषाद मत करो।' सीता कहने लगी 'हे पुत्रों! वे तुम्हारे गुरुजन हैं। उनका मानभंग होना, तुम्हारा मानभंग होना है। तुम अपना चित्त शान्त कर, अयोध्या जाओ और पिता तथा गुरुजनोंको विनयपूर्वक प्रणाम करो। यही तुम्हारी नीतिका मार्ग है।'

पुत्रोंने कहा, कि 'हे माता! जब हमारे पिता शत्रुभावको प्राप्त हुए, तब हम जाकर उन्हें विनययुक्त कैसे प्रणाम करें? तथा दीनताके वचन कैसे कहें,' कि हम तो तुम्हारे पुत्र हैं। संग्राममें चाहे हमारा मरण हो तो भले ही हो, परन्तु हम ऐसे कायरतापूर्ण वचन तो अपने मुखसे नहीं निकालेंगे।' वीर पुत्रोंके नीतियुक्त वचन सुनकर सीता मौन रही। जिसके फलस्वरूप दोनों कुमार भगवानकी पूजा कर, माताको नमस्कार करके अनेक शूरवीर योद्धाओं सहित अयोध्याके प्रति चलनेके लिए नगरसे बाहर निकले।

मार्गमें अनेकों राजा सुन्दर भेंट ले अपनी सेनाओं सहित कुमारोंसे आ मिले। सहस्त्रों सेवक वृक्षोंको काटते ऊँची-नीची विषम भूमिको सम करते, सेनाओंको समय पर भोजनकी व्यवस्था करते हुए अत्यन्त प्रसन्न मनसे अयोध्याकी ओर चले। वे कुछ दिनोंमें अयोध्याके राज्यकी सीमाके समीप आ गये। जहाँ बलदेव राम अपने भाई लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सहित विराजमान थे। वहीं पवित्र सरयू नदी है। कुमारोंने परामर्श कर सरयूनदीके तट पर सेनाका डेरा डाला।

पर कटक निकट आया सुन, श्रीराम-लक्ष्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे परस्पर कहने लगे, कि 'ये युद्धार्थ आये हैं सो शीघ्र ही मरना चाहते हैं।' वासुदेव लक्ष्मणने तत्काल विराधितको सेना एकत्र करनेकी आज्ञा दी। सुग्रीव, भामण्डल आदिको सेना लेकर अयोध्या आनेकी खबर भेजी। समस्त विद्याधर राजा तथा भामण्डल अपनी विशाळ

सेनाओं सहित अयोध्या आये। जब भामण्डलको ज्ञात हुआ, कि सीताको श्रीरामने अपवादके कारण त्याग दिया है, तब वे बहुत दुःखी तथा अशान्त हुए। उन्हें अत्यन्त व्याकुल देख नारदने समस्त वृत्तान्त सुनाकर कहा, कि हे भद्र! अयोध्या पर चढ़ाई करनेवाले ये महासती सीताके पुत्र हैं।

महासती सीता पुण्डरीक नगरमें राजा वज्रजंघके यहाँ कुशल हैं। वहीं दोनों पुत्रोंका जन्म तथा पालन-पोषण हुआ है। पुत्रोंको अत्यन्त पराक्रमी देख राजा वज्रजंघने लवणकुमारको शशिचुला नामक तथा पृथ्वीपुरके राजा पृथुने कुमारोंसे पराजित होकर अपनी पुत्री कनकमाला मदनांकुशको ब्याही है। भामण्डल कुमारोंका प्रताप सुन तथा अयोध्या पर चढ़ाई करनेका साहस देख अत्यन्त आश्चर्यमय हुए तथा हर्षित होकर तत्काल विमानमें बैठ पुण्डरिकपुरको चले।

पुण्डरीक नगरमें राजमहलमें जाकर अत्यन्त स्नेहपूर्वक सीतासे मिले। सीता भामण्डलको देख रुदन करने लगी तथा अपने त्यागे जानेका समस्त वृत्तांत उन्हें सुनाया। भामण्डलने उन्हें धैर्य बंधाकर कहा , कि हे! बहिन तुम्हारे पूर्वोपार्जित पुण्यके प्रभावसे अन्तमें सब भला हुआ, परन्तु कुमारोंने अयोध्या पर चढ़ाई कर देवों द्वारा भी अजेय बलभद्र तथा नारायणको क्रोधित कर अच्छा नहीं किया। अब ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, ताकि युद्ध न होने पावे, अतएव हे बहिन ! तुम मेरे साथ अयोध्या चलो। सीता, भाई भामण्डलके कहनेसे पुत्रवधूओं सहित विमानमें बैठ अयोध्याको चली।

अयोध्याकी ओर विमानमें बैठकर जाते सीता, भाई भामंडल व पुत्रवधूएँ

अनेक ग्राम, नदी, पहाड़ और वनोंको पार कर भामण्डलने रण-भूमिके निकट आकाशमें विमान ठहरा दिया और स्वयं नीचे उतरकर अपनी सेनामें आ मिला।

श्रीराम-लक्ष्मण अनेक विद्याधरोंकी सेनाओं सहित युद्ध-भूमिमें आये। लवणकुमारका सारथी वज्रजंघ तथा अंकुशका सारथी पृथु हुआ। इसी प्रकार श्रीरामका सारथी कृतान्कवक्र तथा लक्ष्मणका सारथी विराधित हुआ। समस्त सेनामें कोलाहल मच गया। जब हनुमानादिक बड़े-बड़े विद्याधर राजाओंने सुना, कि विपक्षी दलनायक महासती सीताके पुत्र हैं, तब उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वे युद्धसे पराङ्मुख हो शिथिल हो गए। आकाशमें विमानमें बैठी सीताको देख हनुमान आदिने उन्हें हाथ जोड़ प्रणाम किया।

लवणकुमार श्रीरामके साथ तथा अंकुश लक्ष्मणके साथ युद्ध करने लगे। श्रीरामने वज्रावर्त धनुष चढ़ा कर कृतांकवक्रसे कहा, कि रथको शीघ्र शत्रुकी ओर ले जाओ। तब कृतान्कवक्रने कहा, कि हे देव! रथके अश्व इन नरवीरोंके बाणोंसे अत्यन्त जर्जरीत हो गये हैं तथा मेरी भुजाएं बाणोंसे बिंध गई हैं। मेरा कवच टूट गया है। श्रीरामने कहा, कि मेरे भी धनुष, हल, मूशल तथा देवोपुनीत समस्त अमोघ शस्त्र न जाने क्यों शिथिल हो रहे हैं!

लव-कुश व राम-लक्ष्मणका परस्पर युद्ध

इधर अंकुशकुमारने वज्रदण्डसे लक्ष्मणके समस्त शस्त्रोंका निराकरण कर स्वयंने शैल नामक शस्त्र चढाया। जिस चोटसे लक्ष्मणके नेत्र घूमने लगे। यह देख विराधितने रथको लौटाकर नगरकी ओर लिया। थोड़ी देरमें लक्ष्मण सचेत हुए उन्होंने विराधितसे कहा, कि रणमें पीठ दिखाना शूरवीरोंका काम नहीं है। अतएव रथको शीघ्र ही शत्रुके सन्मुख ले चलो। विराधितने रथको लौटाया। तब लक्ष्मणने अंकुशके सन्मुख वीरतापूर्ण भयंकर युद्ध किया। अन्तमें लक्ष्मणने क्रोधित होकर चक्रको हाथमें लेकर अंकुश पर चलाया, चक्र प्रभा-रहित हो पुनः लौट आया, तीन बार अंकुश पर चक्र चलाया, परंतु चक्र तीनों बार प्रभा रहित हो पुनः लक्ष्मणके पास पहुँचा।

यह देख लक्ष्मण मनमें विकल्प करने लगे, कि 'मैंने कोटिशिला उठाई, आगममें आचार्योंने भी मुझे अर्धचक्री कहा है। उनके वचन अन्यथा कैसे हो सकते हैं? परंतु आज मुझे यह प्रतीत होता है, कि ये दोनों शत्रु ही बलभद्र तथा नारायण हैं।' इस प्रकार सोचकर शिथिल होकर स्थिर खड़े रहे।

नारदने अनुकूल अवसर देख लक्ष्मणके समीप आकर कहा, कि हे वासुदेव! ये कुमार सीताके पुत्र तथा तुम्हारे अंगज हैं। यह सुन लक्ष्मणने रोमांचित होकर तत्काल कवच तथा शस्त्र जमीन पर डाल दिया और अश्रुपात करने लगे। श्रीराम भी यह वार्ता जान शस्त्रोंको फेंककर मोहके वशमें मूर्छित हो गये, फिर सचेत हो रथसे उतरकर पुत्रोंके समीप गये। दोनों कुमार भी रथसे शीघ्र उतर कर आगे बढ़कर पिताके चरणों पर गिर पड़े। स्नेहसे द्रवीभूत हो श्रीरामने दोनों पुत्रोंको उठाकर हृदयसे लगा लिया और अश्रुपात करने लगे। दोनों कुमारोंने उन्हें धैर्य बंधाकर पूज्य चाचा लक्ष्मणको अत्यन्त विनयपूर्वक प्रणाम किया। तब लक्ष्मणने दोनों कुमारोंको स्नेहपूर्वक हृदयसे लगा लिया। जब शत्रुघ्नने यह वृत्तान्त सुना, तब वे कुमारोंके समीप आये। कुमारोंने शत्रुघ्नको अत्यन्त विनयपूर्वक प्रणाम किया। दोनों पक्षोंके सुभट परस्पर स्नेहपूर्वक मिले।

सीता दोनों पुत्रोंका पराक्रम तथा माहात्म्य देख, हर्षित चित्तसे पुण्डरीक नगरको वापस लौटी। भामण्डल अश्रुपात करता हुआ अत्यन्त स्नेहपूर्वक दोनों भानजोंसे मिला। श्रीराम दोनों पुत्रोंको पुष्पक विमानमें आरूढ़ कर समारोहपूर्वक अयोध्यामें लाये। नगरकी विशेष शोभा कराई। नगर-निवासी दोनों कुमारोंको देख अत्यन्त प्रसन्न हुए।

एक दिन विभीषण, सुग्रीव तथा हनुमानने मिलकर श्रीरामसे प्रार्थना की, कि हे नाथ! हम पर कृपा कर हमारी इतनी विनती मानों। माता जानकी आपके असह्य वियोगसे अत्यन्त चिन्तित एवम् दुःखी हैं। इसलिए हमें उनको अयोध्या लानेकी आज्ञा प्रदान करो! श्रीराम दीर्घ उष्ण श्वास छोड़, क्षणेक विचार कर कहने लगे, कि यद्यपि मैं सीताको महाशीलवन्ती तथा निर्दोष जानता हूँ, तथापि मैंने उसे लोकोपवादके कारण घरसे निकाला है। अब उसे मैं कैसे बुलाऊँ? जब जानकी प्रजाको अपने शीलका विश्वास उत्पन्न करावे तभी मेरा और उसका सहवास हो सकता है, अन्यथा नहीं। समस्त देशोंके नृपति नर-नारियों तथा विद्याधरोंको एकत्र करो। उन सबके समक्ष सीता शुद्ध सिद्ध होकर मेरे महलमें प्रवेश करे।

तत्काल दूर-दूर देशोंके राजाओं नर-नारियों तथा विद्याधरोंके पास अयोध्यामें एकत्र होनेकी सूचना भेजी तथा उनके ठहरनेकी समुचित व्यवस्था की गई। पुरुषोत्तम श्रीरामकी आज्ञासे भामण्डल, विभिषण, हनुमान, सुग्रीव, विराधित इत्यादि बड़े-बड़े विद्याधर नृपति अनेक सेवकों सहित सुन्दर विमानोमें आरूढ़ हो पुण्डरीक नगरको गए। सेवकोंको नगरके बाहर छोड़ सभी लोग सहित सीताके पास जाकर जय-घोष सहित पुष्पाञ्जलि चढ़ाई तथा उनके चरणोंको प्रणाम कर विनयपूर्वक योग्य स्थान पर बैठ गए।

हनुमान, सुग्रीवादि बोले, कि हे देवी! अब समस्त विकल्पोंको छोड़ शोकको त्यागो। इस पृथ्वी पर ऐसा कौनसा प्राणी है, जो आपका अपवाद करे? मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने आपको अयोध्या आनेके निमित्त यह पुष्पक विमान भेजा है, आप इसमें बिराजमान हो अयोध्याको गमन कर, हम सब तथा प्रजाजनोंको हर्षित करो। समस्त राज्य, नगर तथा श्रीरामका विभूति सम्पन्न महल, एक तुम्हारे बिना सूना प्रतीत होता है।

सीता अनेक सखियों सहित पुष्पक विमानमें आरूढ़ हो अयोध्याको चलीं। मार्गमें संध्या हो जानेसे महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें रात्रि व्यतीत कर प्रातः सूर्योदयमें भगवानको नमस्कार कर हथिनी पर आरूढ़ हो श्रीरामकी सभामें पहुँची। सीताको देख सबने जयध्वनि कर उनकी वन्दना की; लक्ष्मणने अर्घ्य दे शीस झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। तदन्तर समस्त राजाओंने उन्हें विनय-युक्त प्रणाम किया। सीता श्रीरामकी प्रसन्नतारहित

मुखाकृति देख मनमें विचारने लगी, कि अभी मेरे वियोगका अंत नहीं आया। मेरा आशाओंसे भरा हुआ जहाज समुद्रके तीर आकर फटना चाहता है। इस प्रकार विविध विकल्पों सहित सीता श्रीरामके सन्मुख जा नीचा मुख कर खड़ी हो गई। श्रीराम ईषत् क्रोधसे बोले, कि हे सीते! तू मेरे सन्मुख क्यों खड़ी है? शीघ्र दूर हो। मुझे तेरे देखनेका कोई अनुराग नहीं। तु दशमुखके महलमें बहुत समय तक रही। अतएव तुझे घरमें रखना उचित नहीं है।

सीता बोली, 'तुम अत्यन्त निर्दय चित्त हो।' गृहस्थ धर्मयुक्त होने पर भी कुटिलतासे तीर्थयात्राका नाम ले, तिरस्कार कर, मूढ़जनके सदृश, गर्भवती होने पर भी, भयानक वनमें अकेली त्यागी। क्या यह आपने उचित किया? यदि मेरा कुमरण होता और कुगतिमें जाती तो आपको कौनसी सिद्धि प्राप्त होती? यदि आपको मनमें मेरेको त्यागनेका विचार था तो मुझे आर्यिकाके निकट छुड़वाते, क्योंकि दीन-दुःखी अनाथोंको जिनशासनका शरण ही हितकारी है। आपने अपनी समझमें कोई कमी नहीं की। अब प्रसन्न होकर जो आज्ञा हो मैं वही करनेको तत्पर हूँ।

श्रीराम बोले कि 'हे देवी! मैं यह भलीभांति जानता हूँ, कि तुम निर्दोष, शीलवती, निष्पाप, अणुव्रत पालनेवाली हो, परन्तु संसारके लोग कुटिल स्वभावी हैं, जो तुम्हारा व्यर्थ अपवाद किया। अब ऐसा करो ताकि सबका सन्देह दूर हो और यथावत् प्रतीति उत्पन्न हो।'

सीताने कहा कि 'आप जो आज्ञा करो, मुझे वही प्रमाण है। संसारमें जितने प्रकारके दिव्य (साधन) हैं, उन सबसे मैं पृथ्वीके लोगोंका सन्देह दूर करनेको उद्यत हूँ। महाविष कालकूट सूंघनेसे, आशीविष सर्प भी भस्म हो जाता है, मैं उसे पान करूँ? अथवा अग्निकी प्रचण्ड ज्वालामें प्रवेश करूँ? जो आप आज्ञा करो वह करूँ।' श्रीरामने कहा 'अग्निकुण्डमें प्रवेश करो।' सीताने हर्षपूर्वक कहा, कि 'मुझे आपकी आज्ञा प्रमाण है।' श्रीरामकी भीषण आज्ञा सुन, नारद, सिद्धार्थ, समस्त विद्याधर एवम् भूमि-गोचरी एक स्वरसे हाहाकार कर बोले, कि 'हे देव! प्रसन्न होओ। अग्निके समान निर्दय चित्त मत हो।' प्रजाजन अत्यन्त व्याकुल हो रुदन कर कहने लगे, कि हे नाथ! चित्तमें सौम्यता लाओ। सीता निर्दोष तथा जगतवन्द्य है। ऐसी कठोर आज्ञा न करो।

श्रीरामने कहा, कि 'जब तुम ऐसे दयावान थे, तो पहले ही अपवाद क्यों उठाया?'

श्रीरामने सेवकोंको आज्ञा दी, कि शीघ्र तीनसौ हाथ चौकोण गड्ढा खोद, उसे सूखे ईंधन चंदन और कृष्णागुरुसे भरकर उसमें साक्षात् मृत्यु स्वरूप धधकती हुई प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित करो। सेवकोंने आज्ञा अनुसार अग्नि-वापिका तैयार की।

इसी समय रात्रिको महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें सकलभूषण मुनिको पूर्वभवके बैरके कारण, महारौद्र विद्युद्वक्र नामक राक्षसीने घोर उपसर्ग किया जिससे महामुनिने समतापूर्वक सहन किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई।

उनकी वन्दनार्थ इन्द्रादिक अनेक देव विविध वाहनों पर आरूढ़ हो, महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें आये। आकाशसे सीताके अग्नि परीक्षाके निमित्त अग्निकुण्डका निर्माण होता देख, मेघकेतु नामक देवने इन्द्रसे कहा, कि हे देव! महासती सीता पर घोर उपसर्ग आ पड़ा है। वह महाश्राविका, पवित्र, पतिव्रता, शीलवन्ती एवम् निर्मल चित्त है, भला उस पर ऐसा घोर उपद्रव कैसे आ गया? तब इन्द्रने मेघकेतुको आज्ञा दी, कि तुम महासती सीताका उपसर्ग निवारण करना और मैं केवलीकी वन्दनाको जाता हूँ।

इन्द्रकी आज्ञासे वह देव अग्निकुण्डके ऊपर आकाशमें विमान स्थिर कर, ठहर गया। कुण्डमें अग्नि डाली गई। उसमेंसे दूर-दूर तक ज्वालाएँ उठने लगीं। जिसके प्रकाशसे समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो उठी। श्रीराम अग्निवापिका देख व्याकुल हो मनमें विचारने लगे, कि लोकापवादके कारण इस प्रकार अग्निसे सीताका मरण तो नहीं होगा? सीताके बिना मुझे क्षण-मात्र सुख नहीं। अब यदि मैं उसे अग्नि-प्रवेशसे रोकता हूँ, तो लज्जाकी बात है। हाय! सिद्धार्थ, नारदादि समस्त लोगोंने इसे निर्दोष और महासती कहकर अग्निमें प्रवेश करानेसे मुझे रोका था, परन्तु मैंने उस समय उनकी बात न मानी। अतएव अब वे भी चुप हो रहे हैं। अब किस बहानेसे अग्निमें प्रवेश करनेसे रोकूं? निःसंदेह जिस भांति मरण उदय होता है, उसी भांति होकर ही रहता है। दैवकी गति विचित्र है। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी प्रबल मोहके वश नाना विकल्पों सहित घोर चिन्ता-ग्रस्त हुए।

जब कुण्डकी अग्नि प्रचण्ड हुई तब महासती सीता निर्भयताके साथ उठी और निश्चल चित्त कायोत्सर्ग कर हृदयमें ऋषभादि भगवानकी स्तुति, पंचपरमेष्ठीको नमस्कार कर हरिवंश तिलक श्री मुनिसुव्रतनाथका ध्यान किया। फिर संसारके समस्त जीवोंसे क्षमाभाव कर बोली, कि हे अग्निकी ज्वाला! यदि मैंने मन-वचन और कायासे पुरुषोत्तम श्रीरामको छोड़ अन्य किसी पुरुषको स्वप्नमें भी अभिलाषा (चाहा) हो, तो तू मुझे क्षणमात्रमें भस्म कर देना। यदि मैं मिथ्यादर्शिनी, पापिनी, व्यभिचारिणी होऊं, तो हे वैश्वानर! मेरी देह दाहको प्राप्त हो और यदि निर्दोष, पतिव्रता, अणुव्रत-धारिणी, श्राविका होऊं, तो तू मुझे भस्म न करना। ऐसा कह कर पंचपरमेष्ठीका ध्यान कर महासती सीताने प्रज्वलित अग्नि-वापिकामें प्रवेश किया।

अग्नि परीक्षा हेतु अग्निकुंडमें जाते सीताजी

□सीताजीके शीलके प्रतापसे अग्निकुंडका अग्निका स्वच्छ शीतल जल बनना व सीताके लिये कमलासनका बनना

महासती सीताके शीलके प्रभावसे अग्निकुण्ड स्वच्छ शीतल जल हो गया। जिसमें अनेकों प्रफुल्लित कमल दृष्टिगोचर होने लगे तथा उन पर भंवरे गुंजारने लगे। अग्निकी सम्पूर्ण सामग्री लोप हो गई तथा उनके स्थानमें जलके झाग उठने लगे। जिसमें मृदंगके समान भयंकर ध्वनि करते हुई भंवरे धूमने लगीं। दूर दूर तक जल उछल उछल कर समस्त दर्शकोंके पैरों तक आ गया फिर क्रमशः निमिष मात्रमें छाती तक आ गया। समस्त भूमिगोचरी अत्यन्त भयभीत हुए। आकाशमें विद्याधरोंको भी विकल्प होने लगा, कि न जाने अब क्या होता है? देखते-देखते जल लोगोंके कण्ठ तक बढ़ गया। सब लोग और भी अधिक भयभीत हुए। जब सिरके ऊपरसे पानी बहने लगा तब लोग ऊँची भुजाएँ कर बालकोंको ऊपर उठा पूकार कर कहने लगे, कि हे देवी! हे लक्ष्मी!! हे कल्याणरूपिणी!!! हमारी रक्षा करो। जब अनगिनती लोगोंके मुखसे ऐसे शब्द अनेक बार निकले। तब सीता माताकी कृपासे जल साम्यताको प्राप्त हो गया। भयानक भँवर शान्त हो गये। लोगोंकी प्राणरक्षा हुई।

सरोवरके मध्य मरकत मणियोंसे निर्मित एक विस्तीर्ण सहस्रदल कमल पर देवोंने रत्नमय सिंहासन रचा। जिस पर देवांगनाओंने महासती सीताको बिराजमान किया तथा समस्त देव जय ध्वनिकर सीताके चरणोंमें पुष्पांजलि चढ़ाने लगे। नाना प्रकारके दिव्य वादित्रोंकी सुमधुर ध्वनि हुई। दोनों पुत्र लवण और अंकुश पानीमें तैरकर माताके निकट जाकर उन्हें नमस्कार कर दोनों तरफ खड़े हो गये। माता सीताने दोनों पुत्रोंके मस्तक पर हाथ रक्खे।

सीताको कमलवासिनी लक्ष्मीके सदृश देख श्रीराम अत्यन्त अनुराग सहित समीप जाकर कहने लगे, कि 'हे देवी! प्रसन्न होकर मेरा अपराध क्षमा करो, तुम मेरी आठ हजार रानियोंमें सर्वश्रेष्ठ पटरानी हो। मैंने लोकापवादके भयसे अज्ञानी होकर तुम्हें बहुत कष्ट पहुँचाया। उसे क्षमा करो। हे कान्ते! मुझ सहित सुखपूर्वक पृथ्वी पर विहार करो।'

सीता, श्रीरामके कोमल और नम्र वचन सुनकर बोली, कि 'हे राघव! मैंने अपने पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मके उदयसे कष्ट पाया। इसमें आप तथा आपकी प्रजाके लोगोंका कोई दोष नहीं। मैंने आपके प्रसादसे स्वर्गके समान सुख भोगे। अब मेरी

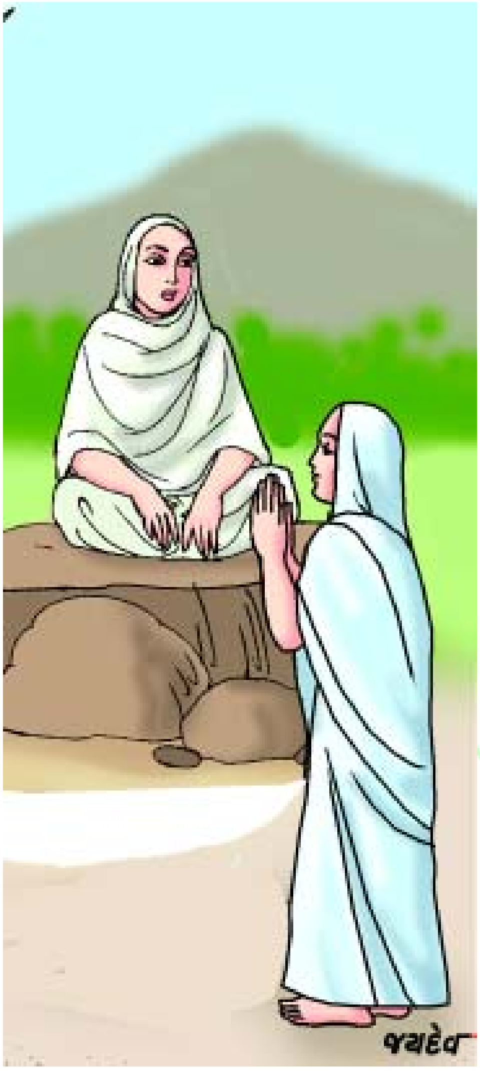

सीताजी द्वारा पृथ्वीमती आर्यिकाके चरणों में दीक्षा ग्रहण

इच्छा है, कि ऐसा उपाय करूं जिससे मेरे स्त्रीलिंगका अभाव हो। ये अत्यन्त क्षुद्र इन्द्रियोंके विनश्वर सुख भोग मूढ़ लोगों द्वारा सेव्य तथा देखने मात्रमें मनोज्ञ हैं। अब मेरा इसमें कोई प्रयोजन नहीं रहा। अब मैं समस्त दुःखोंकी निवृत्तिके अर्थ भगवती जिन-दीक्षा (अर्जिका व्रत) धारण करूँगी। ऐसा कहकर सुन्दर और सुकोमल लम्बे केश उखाड़कर श्रीरामके सन्मुख डाल दिये। तब श्रीराम तीव्र मोहके वशमें मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वे जब तक सचेत हुए तब तक सीताने समस्त आभूषण उतार एक श्वेत वस्त्र धारण कर सम्पूर्ण परिग्रह त्याग पृथ्वीमती आर्यिकाके निकट दीक्षा धारण कर ली। आयुके अंतमें समाधिमरण करके उन्होंने स्त्रीलिंगका छेद कर सोलवें स्वर्गमें महाऋद्धिधारक देवपर्याय प्राप्त की। भविष्यमें रावणका जीव तीर्थंकर होगा, तब वे उनके गणधर बनकर मोक्ष प्राप्त करेंगी।

महासती सीताको भावसह कोटि-कोटि वन्दना ।

महावीरस्वामी भगवानकी [1]पूर्वभवावली

पूर्वभव नं. भव

३२ अनादिसे भवोभव भटकते-भटकते महावीर भगवानका जीव पुरुरवा भील होता है । (इस भवमें उसने सागरसेन मुनिकी बहुत भावसे भक्ति की, यहाँ १२ व्रतोंका पालन किया ।)

३१ सौधर्म स्वर्गमें महाऋद्धिधारी देव (इस भवमें वह सर्वदा भगवानकी पूजा आदि करता था ।)

३० भरत चक्रवर्तीका पुत्र मरीचिकुमार (इस भवमें उसने मिथ्यामतकी पुष्टि व मिथ्या तप किया)

२९ ब्रह्म स्वर्गमें देव

२८ जटिल नामक ब्राह्मण पुत्र

२७ सौधर्म स्वर्गमें देव

२६ पुष्यमित्र ब्राह्मण पुत्र

२५ सौधर्म स्वर्गमें देव

२४ अग्निसह ब्राह्मण पुत्र

२३ सात सागरकी आयुवाला देव

२२ अग्निमित्र ब्राह्मण पुत्र

२१ माहेन्द्र स्वर्गमें देव

२० भारद्वाज ब्राह्मण जगतप्रसिद्ध पुत्र

१९ माहेन्द्र स्वर्गमें देव

पूर्वभव नं. भव

.... अनेकों त्रस स्थावर योनियोंमें असंख्यातों वर्ष भ्रमण करता हुआ

१८ स्थावर नामक ब्राह्मण पुत्र

१७ माहेन्द्र स्वर्गमें देव

१६ विश्वनंदी नामक प्रसिद्ध पराक्रमी राजपुत्र

१५ महाशुक्र स्वर्गमें देव

१४ त्रिपृष्ठ नारायण

१३ सातवीं नरकका नारकी

१२ सिंह

११ प्रथम नरकका नारकी

१० सिंह (इस भवमें निर्मल सम्यक्त्वकी प्राप्ति)

९ सिंहकेतु देव

८ कनकोज्वल नामक विद्याधर

७ सप्तम स्वर्गमें देव

६ हरिषेण नामक राजपुत्र

५ महाशुक्र स्वर्गमें देव

४ प्रियमित्र नामक राजपुत्र

३ सहस्रार स्वर्गमें सूर्यप्रभ नामक देव

२ अच्युत स्वर्गमें अहमिन्द्र

१ इस वर्तमान चौबीसीके अंतिम २४वें तीर्थंकर शासननायक भगवान महावीर

---

१. अन्य-अन्य शास्त्रोंमें ये नाम कहीं-कहीं कुछ-कुछ फर्क लिये हैं । यहाँ ये नाम उत्तरपुराण आधारित लिये गये हैं।

भगवान महावीरको सिंहकी पर्यायमें सम्यग्दर्शन

भगवान महावीरका जीव कई भव पूर्व पुरुरवा नामक भीलोंका राजा था। वहाँसे मुनिराजके उपदेशके प्रतापसे बालव्रतादि धारण कर सौधर्म नामक महाकला विमानमें महाऋद्धिधारी देव हुआ। वहाँसे चयकर कई भवों पश्चात् सिंधुकूटके पूर्व हिमगिरि पर्वत पर वह विकराल सिंहरूपमें उत्पन्न हुआ तथा पूर्व संस्कारके कारण वह बडा ही क्रूर स्वभावका हुआ। उसके नख-दाँत बड़े ही तीक्ष्ण थे।

एक दिन वह सिंह वनमें एक मृगको मारने जा रहा था। उसी समय ज्येष्ठ एवं अमिततेज नामके दो चारण-मुनि आकाशमार्गसे कहीं जा रहे थे। उन्होंने उस क्रूर स्वभावी सिंहको देखा। उस सिंहको देखकर उनको तीर्थंकर भगवानके पूर्व वचनोंका स्मरण हुआ। वे दोनों महामनि पृथ्वी पर उतरे एवं एक सरम्य शिला पर आकर बैठ गये।

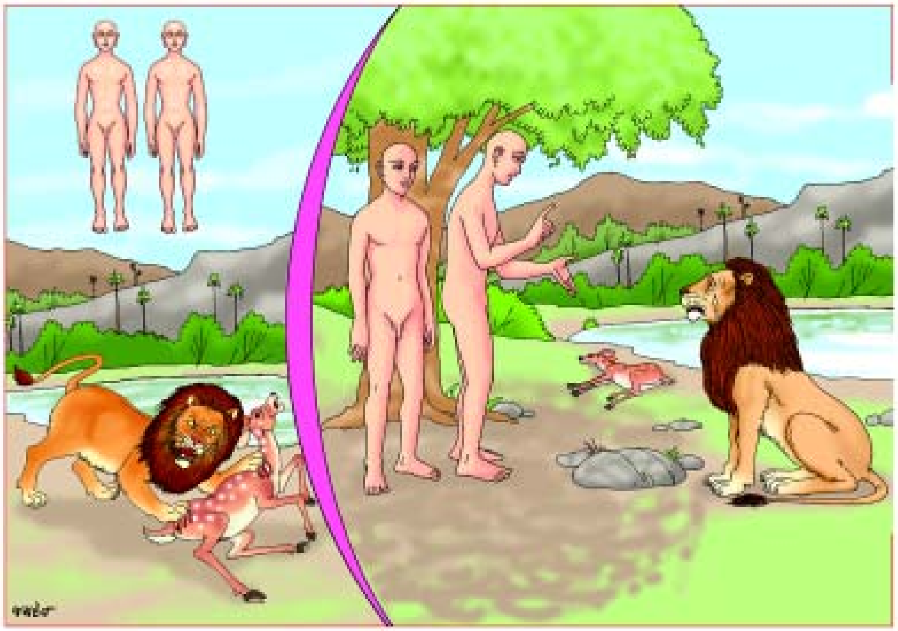

(१) सिंहको संबोधन हेतु आकाशमार्ग द्वारा दो मुनिराजका जंगलमें आगमन
(२) अमिततेज मुनिराज द्वारा सिंहको संबोधन व सिंहको पश्चात्तापकी अश्रुधारा

उस समय उन मुनिराजोंकी शोभा देखते ही बनती थी। सिंह भी थोड़ी दूर पर खड़ा था। कुछ समय बाद अमिततेज नामके मुनिराजने खड़े होकर कहा—अरे वनराज! तू मेरे वचनोंको ध्यान देकर श्रवण कर। जिस समय तू त्रिपृष्ठ नरेशके रूपमें था, उस समय समस्त राजा तेरे आश्रयमें थे। तूने राज्य-लाभकी आकांक्षासे हिंसादि कार्योंको किये थे एवं धर्म-दान आदि कार्योंकी उपेक्षा की थी। केवल यही नहीं, तूने श्रेष्ठ-मार्गको दोष लगाकर मिथ्यामार्गको बढ़ानेमें सहायता पहुँचाई और भगवान ऋषभदेवके वचनोंका भरपूर अनादर किया था। उसी मिथ्यात्वसे उत्पन्न पापोदयसे पीड़ित होकर, तुझे अनेक दुःख भोगने पड़े। तूने इष्ट-वियोग तथा अनिष्ट-संयोगरूप अनेक वेदनायें सही। पुनः उसी मिथ्यारूपी महान पापसे तू विभिन्न स्थावर एवं त्रस योनियोंमें भटकता रहा।

किसी कारणवश तू किसी राजाके यहाँ उत्पन्न हुआ। वहाँ तेरा नाम विश्वनंदी पड़ा। तूने संयम धारण किया एवं त्रिपृष्ठ नामका नारायण हुआ। वहाँसे भयंकर नरकके दुःख भोगे अभी भी तू इस तरह क्रूरता करके महान पापका अर्जन करता हुआ दुःखके लिये फिर उत्साह कर रहा है? अरे पापी! तेरा अज्ञान बहुत बढ़ा हुआ है। उसीके प्रभावसे तू तत्त्वको नहीं जानता है।

इस प्रकार मुनिराजके वचन सुनकर, उस सिंहको शीघ्र ही जातिस्मरण हो गया। संसारके भयंकर दुःखोंसे उत्पन्न हुए भयसे उसका समस्त शरीर काँपने लगा तथा आँखोंसे आँसू गिरने लगे। सिंहकी आँखोंसे बहुत देर तक अश्रुरूपी जल गिरता रहा; जिससे ऐसा जान पडता था, मानों हृदयमें सम्यक्त्वके लिये स्थान देनेकी इच्छासे मिथ्यात्व ही बाहर निकल रहा था। जिन्हें पूर्व जन्मका स्मरण हो गया था, ऐसे निकटभव्य जीवोंको जो शोक होता है, ऐसा शोक संसारमें किसीको नहीं होता।

मुनिराजने देखा, कि सिंहका अन्तःकरण शान्त हो गया है और यह मेरी ही ओर देख रहा है। इससे जान पड़ता है, कि यह इस समय अवश्य ही अपना हित ग्रहण करेगा, ऐसा विचार कर मुनिराज फिरसे कहने लगे, कि तू पहले पुरुरवा भील था, फिर धर्म सेवन कर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहाँसे चयकर इसी भरतक्षेत्रमें अत्यन्त दुर्मति मरीचि हुआ। उस पर्यायमें तूने सन्मार्गको दूषित कर कुमार्गकी वृद्धि

की। श्री ऋषभदेव तीर्थंकरके वचनोंका अनादर कर तू संसारमें भ्रमण करता रहा। इस भांति प्रत्येक भवोंमें विविध पापोंका संचय करनेसे जन्म, जरा, और मरणके दुःख भोगता रहा तथा बड़े भारी पापकर्मके उदयसे प्राप्त होनेवाले इष्ट-वियोग तथा अनिष्ट संयोगका तीव्र दुःख चिरकाल तक भोगकर तूने त्रस स्थावर योनियोंमें असंख्यात वर्ष तक भ्रमण किया। इस भांति मुनिश्वरदेवने उसके पूर्व भवोंका संक्षिप्त वर्णन व उसमें किये हुए पापोंका फल दिखाया और कहा, अब इस भवसे दसवें भवमें तू जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रकी वर्तमान चौबीसीका अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकरसे सुना है। हे बुद्धिमान्! आजसे लेकर संसाररूपी अटवीमें गिरानेवाले मिथ्यामार्गसे अब तू विरक्त हो और आत्माका हित करनेवाले मार्गमें रमण कर—उसीमें लीन रह। यदि आत्मकल्याणकी तेरी इच्छा है और लोकके अग्र भागपर तू स्थिर रहना चाहता है, तो आप्त, आगम और पदार्थोंकी श्रद्धा धारण कर।

इस प्रकार उस सिंहने मुनिराजके वचन हृदयमें धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजोंकी भक्तिके भारसे नम्र होकर बार-बार प्रदक्षिणाएँ दीं, बार-बार प्रणाम किया, [1]काल आदि लब्धियोंके मिल जानेसे अर्थात् अपने अंतरंग पुरुषार्थसे शीघ्र ही तत्त्वश्रद्धान धारण किया और मन स्थिर कर श्रावकके व्रत ग्रहण किये। मुनिराजके वचनोंसे उसकी क्रूरता दूर हुई एवम् दयाने सिंहके मनमें प्रवेश किया सो ठीक ही है, क्योंकि (स्व) कालको बल प्राप्त किए बिना ऐसा कौन है, जो शत्रुको दूर हटा सकता है?

मोहनीय कर्मका क्षयोपशम होनेसे उस सिंहका रौद्र रस स्थिर हो गया और उसने शीघ्र ही शान्तरस धारण कर लिया। निराहार रहनेके अलावा सिंहने और कोई सामान्य व्रत धारण नहीं किया, क्योंकि मांसके अलावा उसका और कोई आहार नहीं था। आचार्य कहते हैं, कि इससे बढ़कर और साहस क्या हो सकता है? प्राण नष्ट होनेपर भी चूँकि उसने अपने व्रतका अखण्डरूपसे पालन किया था। इससे जान पड़ता था, कि उसकी शूरवीरता सफल हुई थी और उसकी वह पुरानी शूरता (पापकी शूरता)

१. काल आदि लब्धि = काललब्धि (क्षयोपशम लब्धि), करणलब्धि, उपदेश (देशना) लब्धि, प्रायोग्यलब्धि, उपशम (विशुद्धि लब्धि) नि.सा. गा. ४१, १५६

जंगलमें सिंह (भगवान महावीरका पूर्व १०वाँ भव)का निराहार आत्मध्यानमें मग्न,
सिंहकी शांतता देख जातिविरोधी पशुओंका सिंहके पास खेलना

उसीका घात करनेवाली हुई थी। महातमःप्रभा नामक सातवें नरकके नारकी उपशम सम्यग्दर्शनको स्वभावसे ही ग्रहण कर लेते हैं। इसलिए सिंहके सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेमें आश्चर्य नहीं है।

परमपदकी इच्छा करनेवाला वह धीरवीर, सब दुराचारोंको छोड़कर सब सदाचारोंके सन्मुख होता हुआ, चिरकाल तक निराहार रहा। 'तिर्यंचोंके संयमासंयमके आगेके व्रत नहीं होते, ऐसा आगममें कहा गया है। इसलिए वह रुक गया था, अन्यथा अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करता'। इस कहावतका वह विषय हो रहा था। (यह अलंकारिक भाषा है। अतः उस सिंहका पुरुषार्थ अत्यधिक उग्र होने पर भी, वह अपनी शुद्ध परिणतिरूप आत्मिक उज्ज्वलता, मात्र पञ्चम गुणस्थानकी दशा जितनी ही होनेसे, वह पञ्चम गुणस्थानसे ऊपरकी शुद्धि नहीं प्राप्त कर सका था।) जिसप्रकार अग्निमें तपाया हुआ स्वर्ण शीतल जलमें डाल देनेसे ठण्डा हो जाता है, उसी प्रकार क्रूरतासे बढ़ी हुई उसकी शूरवीरता उस समय बिलकुल नष्ट हो गयी थी। दयाको धारण करनेवाले उस सिंहमें मृगारि शब्दने अपनी सार्थकता छोड़ दी थी अर्थात् अब वह मृगोंका शत्रु नहीं रहा था। सो ठीक ही है, क्योंकि आश्रित रहनेवाले मनुष्योंका स्वभाव प्रायः स्वामीके समान ही हो जाता है। वह सिंह सब जीवोंके लिए केवल शरीरसे चित्रलिखित सिंह (वनराज)के समान जान पडता था, किन्तु चित्तसे भी वह इतना शान्त हो चुका था, कि उससे किसीको भी भय उत्पन्न नहीं होता था। सो ठीक ही है, क्योंकि दयाका माहात्म्य ही ऐसा है। इस प्रकार व्रत सहित संन्यास धारण कर वह एकाग्र चित्तसे मरा जिससे शीघ्र ही सौधर्म स्वर्गमें सिंहकेतु नामका देव हुआ।

वही सिंहका जीव भविष्यमें भगवान महावीर होगा। सिंहके भवमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेरूप उग्र पुरुषार्थकी अपूर्वताको धन्य है। हमें भी ऐसा पुरुषार्थ हो, यह ही भावना।

भगवान महावीरके चरणोंमें कोटि-कोटि वन्दन।

राजकुंवर वज्रबाहु व उनके साले उदयसुंदरके साथ श्वसुरके घर जाना, वज्रबाहुकी
दृष्टि दूर पर्वत पर बैठे मुनिराजको टकटकी लगाकर देखना

शिक्षाप्रद वज्रबाहुका वैराग्य

वर्तमान चौबीसीके भगवान मुनिसुव्रत तीर्थंकरका अन्तराल शुरु होने पर अयोध्या नामक विशाल नगरी जिसमें देवोंका आगमन जारी रहता था। उसमें विजयस्यंदन नामका बड़ा राजा हुआ। उसे लोग संक्षिप्तमें 'विजय' नामसे भी पुकारते थे। उसने समस्त शत्रुओंको जीत लिया था। वह सूर्यके समान प्रतापसे संयुक्त था तथा प्रजाका पालन करनेमें निपुण था। उसकी हेमचूला नामकी महातेजस्वी पट्टरानी थी। उसके सुरेन्द्रमन्यु नामका महागुणवान पुत्र उत्पन्न हुआ। सुरेन्द्रमन्युकी कीर्तिसमा स्त्री थी। सो उसके चंद्र और सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाले दो पुत्र हुए। उनमेंसे बड़े पुत्रका नाम वज्रबाहु और छोटे पुत्रका नाम पुरन्दर था। ये दोनों ही पुत्र गुणोंसे सुशोभित थे। दोनों ही सार्थक नामको धारण करनेवाले थे और संसारमें सुखसे क्रीडा करते थे।

उसी समय अत्यन्त मनोहर हस्तिनापुर नामक नगरमें इन्द्रवाहन नामका राजा राज्य करता था। उसकी स्त्रीका नाम चूडामणि था। उन दोनोंके मनोदया नामकी अत्यन्त सुन्दर पुत्री थी, उसने लोकमें अत्यन्त प्रशंसनीय वज्रबाहु कुमारसे विवाह किया। विवाहके बाद वज्रबाहुकुमार मनोदया रानीके प्रेममें अत्यंत आसक्त होनेसे वे मनोदयाको एक क्षण भी छोड़ना नहीं चाहते थे। एक बार कन्याका भाई उदयसुन्दर उसकी बहनको लेनेके लिए वज्रबाहुके घर गया। जिसपर अत्यन्त सुशोभित सफेद छत्र लग रहा था, ऐसा वज्रबाहु उदयसुन्दरके निवेदनसे स्वयं भी मनोदयाके साथ श्वसुरके घर जाने तैयार हो गये। वज्रबाहु बड़े वैभवके साथ श्वसुरके नगरकी ओर चला।

चलते-चलते वज्रबाहुकुमारकी दृष्टि वसन्त नामक मनोहर पर्वत पर पड़ी। वे जैसे-जैसे उस पर्वतके समीप आते जाते, वैसे-वैसे उसकी परम शोभाको देखते हुए, हर्षको प्राप्त हो रहे थे। फूलोंकी धूलिसे मिली सुगन्धित वायु उसका आलिङ्गन कर रही थी सो ऐसा जान पड़ता था, मानो चिरकालके बाद प्राप्त हुआ मित्र ही आलिंगन कर रहा हो। ऐसा वह पर्वत कोकिलाओंके शब्दोंके बहाने मानो वज्रबाहुका जय-जयकार

ही कर रहा था। वीणाकी झंकारके समान मनोहर भ्रमरोंके शब्दोंने उनके श्रवण तथा मनको हर लिया।

'यह आम है, यह कनेर है, यह फूलोंसे सहित लोध्र है, यह प्रियाल है और यह जलती अग्निके समान सुशोभित पलाश है'। इस प्रकार क्रमसे वृक्षोंकी शोभा निहारते –चलते हुए उनकी निश्चल दृष्टि–दूरीके कारण, जिसमें मनुष्यके आकारका संशय हो रहा था–ऐसे मुनिराज पर पड़ी। पद्मासन स्थित मुनिराजके विषयमें वज्रबाहुको वितर्क उत्पन्न हुआ, कि 'क्या यह ठूठ है? या साधु है, अथवा पर्वतका शिखर है?'

तदनन्तर जब अत्यन्त समीपवर्ती मार्गमें पहुँचे, तब उन्हें निश्चय हुआ, कि ये महायोगी–मुनिराज हैं। वे मुनिराज ऊँची-नीची शिलाओंसे विषम धरातलमें स्थिर पद्मासन मुद्रामें विराजमान थे, सूर्यकी किरणोंसे आलिंगित होनेके कारण उनका मुखकमल म्लान हो रहा था, उनका वक्षस्थल सुमेरुके तटके समान स्थूल तथा चौड़ा था, तदपि सौम्य थे। उनके निश्चल नेत्र नासिकाके अग्रभाग पर स्थापित थे।

इस प्रकार एकाग्ररूपसे ध्यान करते हुए मुनिराजको देखकर राजा वज्रबाहु इस प्रकार विचार करने लगे, कि अहो! इन अत्यन्त प्रशान्त उत्तम मानवको धन्य है, जो समस्त परिग्रहका त्यागकर मोक्षकी इच्छासे तपस्या कर रहे हैं। इन मुनिराज पर मुक्ति लक्ष्मीने अनुग्रह किया है, इनकी बुद्धि आत्मकल्याणमें लीन है, इनकी आत्मा परपीड़ासे निवृत्त हो चुकी है, ये अलौकिक लक्ष्मीसे अलंकृत हैं, शत्रु और मित्र, रत्नोंकी राशि और तृणमें समान बुद्धि रखते हैं, मान एवं मत्सरसे रहित हैं, सिद्धिरूपी वधूका आलिंगन करनेमें इनकी लालसा बढ़ रही है, इन्होंने इन्द्रियों और मनको वशमें कर लिया, ये सुमेरुके समान स्थिर हैं तथा कुशल कार्यमें मन स्थिर कर ध्यान कर रहे हैं। मनुष्य जन्मका पूर्ण-फल इन्होंने प्राप्त किया है, इन्द्रियरूपी दुष्ट चोर इन्हें नहीं ठग सके हैं।

और मैं? मैं तो कर्मरूपी पाशोंसे उस तरह निरन्तर वेष्टित हूँ, जिस तरह कि आशीर्विष जातिके बड़े-बड़े सर्पोंसे चन्दनका वृक्ष वेष्टित होता है। जिसका चित्त प्रमादसे भरा हुआ है, ऐसे जड़तुल्य मुझ पापीके लिए धिक्कार है। मैं भोगरूपी पर्वतकी बड़ी गोलचट्टानके अग्रभाग पर बैठकर सो रहा हूँ। यदि मैं इन मुनिराजकी इस

अवस्थाकों धारण कर सकूँ तो मनुष्य-जन्मका फल मुझे भी प्राप्त हो जावे।

इस प्रकार विचार करते हुए राजा वज्रबाहुकी दृष्टि उन निर्ग्रंथ मुनिराज पर खम्भेंमें बँधी हुई रस्सीके समान अत्यन्त निश्चल हो गई। इस तरह वज्रबाहुकी निश्चल दृष्टि देख, उदयसुन्दरने मुस्कराकर कहा, कि आप इन मुनिराजको बड़ी देरसे देख रहे हैं, सो क्या ऐसी दीक्षाको ग्रहण कर रहे हो? इसमें आप अनुरक्त दिखाई पड़ते हैं। तदनन्तर अपने भावको छुपाकर वज्रबाहुने कहा, कि 'हे उदय! तुम्हारा क्या भाव है, सो तो कहो।' उसे अन्तरसे विरक्त न जानकर, उदयसुन्दरने परिहासके अनुरागवश दाँतोंकी किरणोंसे ओठोंको व्याप्त करते हुए कहा, कि यदि आप इस दीक्षाको स्वीकृत करते हैं तो मैं भी आपका सखा अर्थात् साथी होऊँगा। ''अहो' कुमार! आप इस मुनिदीक्षासे अत्यधिक सुशोभित होओगे।'' 'ऐसा हो' इस प्रकार कहकर अत्यंत वैभवी आभूषणोंसे युक्त वज्रबाहु हाथीसे उतरे और पर्वत पर चढ गये।

तब विशाल नेत्रोंको धारण करनेवाली स्त्रियाँ जोर-जोरसे रोने लगीं। उनके नेत्रोंसे टूटे हुए मोतियोंके हारके समान आँसुओंकी बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं। उदयसुन्दरने भी आँखोंमें आँसू भरकर कहा, कि 'हे देव! प्रसन्न होओ, यह क्या कर रहे हो? मैंने तो हँसी की थी'। तदनन्तर मधुर शब्दोंमें सान्त्वना देते हुए वज्रबाहुने उदयसुन्दरसे कहा, कि 'हे उत्तम अभिप्रायके धारक! मैं तो कुएँमें गिर रहा था सो तुमने निकाला है। तीनलोकोंमें तुम्हारे समान मेरा दूसरा मित्र नहीं है। हे सुन्दर! संसारमें जो उत्पन्न होता है, उसका मरण अवश्य होता है और जो मरता है उसका जन्म अवश्यंभावी है। यह जन्म-मरणरूपी घटीयन्त्र बिजली, लहर तथा दुष्ट सर्पकी जिह्वासे भी अधिक चञ्चल है तथा निरन्तर घूमता रहता है। दुःखमें फँसे हुए संसारके जीवनकी ओर तुम क्यों नहीं देख रहे हो? ये भोग स्वप्नोंके भोगोंके समान हैं, जीवन बुद्बुदके तुल्य है, स्नेह संध्याकी लालिमाके समान है और यौवन फूलके समान है। हे भद्र! तेरी हँसी भी मेरे लिए अमृतके समान हो गई। क्या हँसीमें पी गई औषधि रोगको नहीं हरती? चूँकी तुमने मेरी कल्याणकी ओर प्रवृत्ति कराई है, इसलिए आज तुम्हीं मेरे बन्धु हो। मैं संसारके आचारमें लीन था। आज तुम उससे विरक्तिके कारण हो गये। लो, अब मैं दीक्षा लेता हूँ। तुम अपने अभिप्रायके अनुसार कार्य करो'। इतना कहकर

वज्रबाहुको दीक्षा लेते रोकती पत्नी मनोदया व उदयसुंदर

वे गुणसागर नामक मुनिराजके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम कर बड़ी विनयसे हाथ जोड़ते हुए बोले, कि 'हे स्वामिन्! आपके प्रसादसे मेरा मन पवित्र हो गया है, सो आज मैं इस भयङ्कर संसाररूपी कारागृहसे निकलना चाहता हूँ'।

तदनन्तर ध्यान समाप्त होनेपर मुनिराजने उसके इस कार्यकी अनुमोदना की, सो महासंवेगसे भरे वज्रबाहु वस्त्राभूषण त्यागकर उनके समक्ष शीघ्र ही पद्मासनसे बैठ गये। उन्होंने पल्लवके समान लाल-लाल हाथोंसे केश उखाड़कर फेंक दिये। उन्हें उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानों उनका शरीर रोगरहित होनेसे हलका हो गया हो। इस तरह उन्होंने वैभवी वेषका परित्याग कर मोक्ष प्राप्त करानेवाली भगवती जिन दीक्षा धारण कर ली। तदनन्तर जिन्होंने राग-द्वेष और मदका परित्याग कर दिया था, संवेगकी ओर जिनका वेग बढ़ रहा था, तथा जो कामके समान सुंदर विभ्रमको धारण करनेवाले थे, ऐसे उदयसुन्दर आदि छब्बीस राजकुमारोंने भी परमोत्साहसे सम्पन्न हो मुनिराजको प्रणाम कर दीक्षा धारण कर ली। यह समाचार जानकर भाईके स्नेहसे भीरु मनोदया(वज्रबाहुकी स्त्री)ने भी बहुत भारी संवेगसे युक्त हो दीक्षा ले ली। सफेद वस्त्रसे जिसका विशाल स्तनमंडल आच्छादित था, जिनका उदर अत्यन्त कृश था और जिसके शरीर पर मैल लग रहा था, ऐसी मनोदया बड़ी तपस्वीनी हो गई।

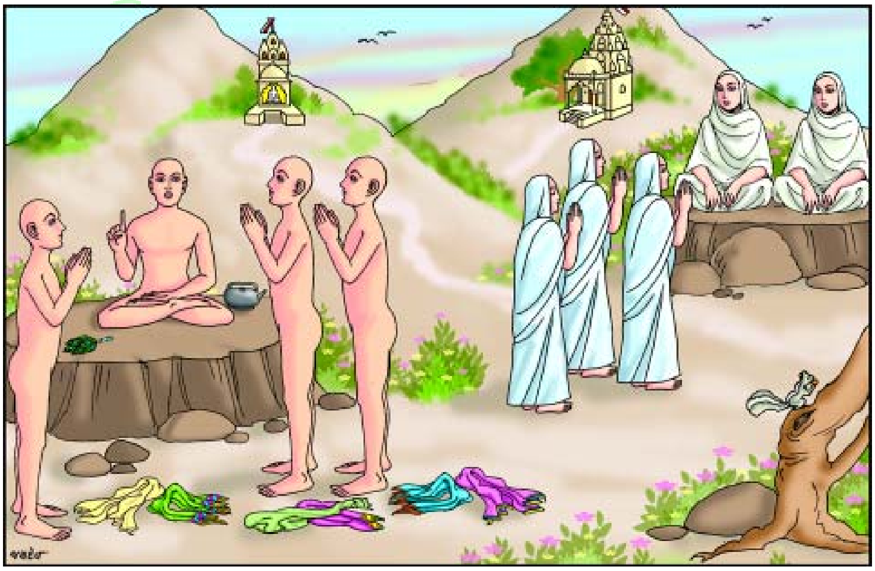

वज्रबाहु, उदयसुंदर आदि २६ कुमारों द्वारा मुनिदीक्षा व
मनोदया आदि अन्य राणीओं द्वारा आर्यिका व्रत अंगीकार करना

वज्रबाहुके दादा विजयस्यन्दनको जब इस समाचारका पता चला तब शोकसे पीड़ित होता हुआ, वह सभाके बीचमें इस प्रकार बोला, कि अहो! आश्चर्यकी बात देखो, प्रथम अवस्थामें स्थित मेरा पोता विषयोंसे विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षाको प्राप्त हुआ है। मेरे समान वृद्ध पुरुष भी दुःखसे छोड़ने योग्य जिन विषयोंके अधीन हो रहा है, वे विषय उस कुमारने कैसे छोड़ दिये अथवा उस भाग्यशालीपर मुक्तिरूपी लक्ष्मीने बड़ा अनुग्रह किया है। जिससे वह भोगोंको तृणके समान छोड़कर निराकुल भावको प्राप्त हुआ है।

प्रारम्भमें सुन्दर दिखनेवाले पापी विषयोंने जिसे चिरकालसे ठगा है तथा जो वृद्धावस्थासे पीड़ित है, ऐसा मैं अभागा इस समय कौनसी चेष्टाको धारण करूँ? मेरे जो केश इन्द्रनीलमणिकी किरणोंके समान श्याम वर्ण थे। वे ही आज कासके फूलोंकी राशिके समान सफेद हो गये हैं। सफेद काली और लाल कान्तिको धारण करनेवाले मेरे जो नेत्र, मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले थे, अब उनका मार्ग भृकुटीरूपी लताओंसे आच्छादित हो गया है अर्थात् अब वे लताओंसे आच्छादित गर्तके समान जान पड़ते हैं। मेरा जो यह शरीर कान्तिसे उज्ज्वल तथा महाबलसे युक्त था। वह अब वर्षासे ताड़ित चित्रके समान निष्प्रभ हो गया। धर्म, अर्थ और काम ये तीनों पुरुषार्थ तरुण मनुष्यके योग्य हैं। वृद्ध मनुष्यके लिए इनका करना कठिन है। चेतनाशून्य, दुराचारी, प्रमादी तथा भाई-बन्धुओंके मिथ्या स्नेहरूपी सागरकी भँवरमें पड़े हुए मुझ पापीको धिक्कार हो। इस प्रकार कहकर तथा समस्त बन्धुजनोंसे पूछकर उदार हृदयी वृद्ध राजा विजयस्यन्दनने निःस्पृह हो छोटे पोते पुरन्दरके लिए राज्य सौंप दिया और स्वयं निर्वाणघोष नामक निर्ग्रंथ माहात्माके समीप अपने पुत्र सुरेन्द्रमन्युके साथ दीक्षा ले ली।

ऐसे वैराग्यवंत वज्रबाहु आदि मुनि भगवन्त हम पर कृपा करें व करुणाकर हमें भवसागरसे निकालें। उनके पावन चरणोंमें कोटि-कोटि वन्दन।

बाहुबली मुनिन्द्रकी चक्रवर्ती भरत द्वारा पूजा

चक्रवर्ती भरत दिग्विजय करके अयोध्या वापस आये, परन्तु चक्रने नगरमें प्रवेश नहीं किया। प्रधानोंसे ज्ञात हुआ, कि भाईयोंने भरत महाराजाकी आधीनता स्वीकार नहीं की है। अतः उनकी आधीनता स्वीकार करने पर ही चक्र नगरमें प्रवेश करेगा।

भाईयोंको दूत द्वारा आधीनता हेतु संदेश भेजा। भरतके ९९ भाईयोंको पिता द्वारा राज्य मिला था। अतः आधीनता स्वीकारनेकी बात सुन, उन्होंने वैराग्यसे भगवती जिनदीक्षा ले ली। परंतु अनुज भाई बाहुबली क्रुद्ध हुए और युद्ध के लिए तैयार हुए। दोनों ओर महायोद्धाओंको देख दोनों सेनाके प्रधान सेनापतिने मंत्रणा करके निर्णय लिया, कि बिना बातकी जानहानि बचानेके लिए दोनों भाई स्वयं नेत्रयुद्ध, जलयुद्ध व मल्लयुद्ध द्वारा आपसमें निर्णय ले लें। यह बात दोनों भाईयोंको योग्य लगनेसे परस्पर

भरत व बाहुबलीका दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध व मल्लयुद्ध

अपनी हार पर भरत द्वारा प्रिय बाहुबली पर चक्र चलाना, चक्रका बाहुबलीकी
प्रदक्षिणा देकर भरतके पास वापस आना

(60)

दोंनोंने तीनों युद्ध किए। इन तीनों युद्धमें महाराजा भरतकी हार हुई।

भरतने अपनी हार होती हुई देखकर बाहुबली पर चक्र चलाया। परंतु चक्र गोत्रघात नहीं करता। अतः भरतके हाथमें वापस आ गया। यह देख राज्यके लोभमें भरत द्वारा किये गये घृणित कार्यसे बाहुबलीका हृदय क्षुब्ध हो गया, क्योंकि दोनों भाईयोंको एक दूसरेके प्रति अत्यंत प्रेम था–ऐसा होने पर भी राज्य जैसी तुच्छ वस्तु हेतु, प्रिय अनुज भाई पर चक्र चलानेसे एक ओर वे क्षुब्धहृदयी थे। दूसरी ओर अनेक बड़े बड़े राजाओंने समीप आकर महाराज बाहुबलीके विजयकी प्रशंसा करते हुए, उनका सत्कार किया और बाहुबलीने भी उस समय अपने आपको उत्कृष्ट अनुभव किया। साथ ही साथ वे यह भी चिन्तवन करने लगे, कि देखो, हमारे बड़े भाईने इस नश्वर राज्यके लिए कैसा लज्जाजनक कार्य किया है? यह साम्राज्य-फल कालमें बहुत दुःख देनेवाला है, और क्षणभंगुर है। इसलिए इसे धिक्कार हो, यह व्यभिचारिणी स्त्रीके समान है, क्योंकि जिस प्रकार व्यभिचारीणी स्त्री पतिको छोड़कर अन्यके पास चली जाती है; उसी प्रकार यह साम्राज्य भी एक स्वामीको छोड़कर अन्य स्वामीके पास चला जाता है। यह राज्य प्राणियोंको छोड़ देता है परंतु अविवेकी प्राणी इसे नहीं छोड़ते, यह दुःखकी बात है।

अहा! विषयोंमें आसक्त हुए पुरुष, इन विषयजनित सुखोंका निन्द्यपना, अपकारकता, क्षणभंगुरता और नीरसपनेको कभी नहीं सोचते हैं। जिनके वशमें पड़े हुए प्राणी अनेक दुःखोंकी परम्पराको प्राप्त होते हैं, ऐसे विषके समान भयंकर विषयोंको कौन बुद्धिमान पुरुष प्राप्त करना चाहेगा? इससे तो विष खा लेना कहीं अच्छा है, क्योंकि वह एक भवमें प्राणीको मारता है अथवा नहीं भी मारता है, परन्तु विषय सेवन करना अच्छा नहीं है, क्योंकि ये विषय प्राणियोंको अनंत भवमें अनन्त बार फिर-फिरसे मारते हैं। जो प्रारम्भकालमें तो मनोहर मालूम होते हैं, परन्तु फल-कालमें कड़वे (दुःख देनेवाले) जान पड़ते हैं। ऐसे विषयोंके लिए यह अज्ञ प्राणी, क्या व्यर्थ ही अनेक दुःखोंको प्राप्त नहीं होता है? जो प्रारम्भकालमें तो अत्यन्त आनन्द देनेवाले हैं और अन्तमें प्राणोंका हरण करते हैं। ऐसे किंपाक फल (विषफल)के समान इन विषयोंको कौन बुद्धिमान सेवन करेगा?

इस भांति बाहुबली संसार व भोगसे वैराग्यवंत बनते हुए बड़े भाईके व्यवहारका चिरकाल तक विचार करते हुए, उन्होंने भरतको संबोधन करते हुए, नीचे लिखे अनुसार कठोर अक्षरोंवाली वाणी कही।

हे राजाओंमें श्रेष्ठ! क्षणभरके लिए अपनी लज्जा या झेंप छोड़कर, मैं कहता हूँ सो सुन। 'तूने मोहित होकर ही इस न करने योग्य बड़े भारी साहसका सहारा लिया है। जो कभी भिद नहीं सकता,' ऐसे मेरे शरीररूपी पर्वत पर तूने चक्र चलाया। तेरा चक्र वज्रके बने हुए पर्वत पर पड़नेके समान व्यर्थ है; ऐसा निश्चयसे समझ'।

दूसरी बात यह है, कि जो तूने भाईरूप बरतनोंको तोड़कर राज्य प्राप्त करना चाहा है, सो उससे तूने क्या बहुत ही अच्छा कार्य किया है? इस राज्यलक्ष्मीको तू एक अपने ही द्वारा उपभोग करने योग्य तथा अविनाशी समझता है, और जिसका तूने आदर किया है, वह राज्यलक्ष्मी तुझे प्रिय रहे।

हे आयुष्मान्, अब यह मेरे योग्य नहीं है, क्योंकि बन्धन सज्जन पुरुषोंके आनन्दके लिए नहीं होता। यह लक्ष्मी स्वयं एक प्रकारका बंधन है अथवा कर्मबन्धका कारण है। इसलिए सज्जन पुरुष इसे कभी नहीं चाहते। यद्यपि यह तेरी लक्ष्मी फलवती है, तथापि अनेक प्रकारके काँटोंसे और विपत्तियोंसे दूषित है। भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा? जो काँटेवाली लताको हाथसे छुएगा। अब हम कण्टकरहित तपरूपी लक्ष्मीको अपने आधीन करना चाहते हैं। इसलिए यह राज्यलक्ष्मी हमारे लिए विषके काँटोंकी श्रेणीके समान सर्वथा त्याज्य है। अतएव जो मैंने यह अपराध किया है, उसे क्षमा कर दीजिए। मैं विनयसे च्युत हो गया था अर्थात् मैंने आपकी विनय नहीं की। सो इसे मैं अपनी चंचलता ही समझता हूँ। जिस प्रकार मेघसे निकलती हुई गर्जना, सन्तप्त मनुष्योंको आनन्दित कर देती है, उसी प्रकार महाराज बाहुबलीके मुखसे निकलते हुए वाणीके समूहने चक्रवर्ती भरतके सन्तप्त मनको कुछ-कुछ आनन्दित कर दिया था, पर उसी समय 'हा! मैंने बहुत ही दुष्टताका कार्य किया है', इस प्रकार जोर-जोरसे अपनी निन्दा करते हुए, चक्रवर्ती अपने पाप कर्मसे बहुत ही सन्तप्त हुए। जिसमें अनेक प्रकारके अनुनय-विनयका प्रयोग किया गया है, इस रीतिसे (इस हुंडावसर्पिणी कालके) अन्तिम कुलकर महाराज भरतने बार-बार प्रसन्न करते हुए बाहुबलीको, अपने

संकल्पसे पीछे नही हटा सके, ठीक ही है, क्योंकि तेजस्वी पुरुषोंकी स्थिरता भी आश्चर्यजनक होती है। उन्होंने अपने पुत्र महाबलीको राज्यलक्ष्मी सौंपकर स्वयं गुरुदेवके चरणोंकी आराधना करते हुए भगवती जिन दीक्षा धारण कर ली। जिन्होंने समस्त परिग्रह छोड़ दिया है तथा जो दीक्षारूपी लतासे आलिंगित हो रहे हैं, ऐसे वे बाहुबली उस समय ऐसे जान पड़ते थे, मानो पत्तोंके गिर जानेसे कृश, लतायुक्त कोई वृक्ष ही हो।

गुरुकी आज्ञामें रहकर शास्त्रोंका अध्ययन करनेमें कुशल तथा एकल विहारीत्व धारण करनेवाले जितेन्द्रिय बाहुबलीने एक वर्षका प्रतिमा योग धारण किया अर्थात् एक ही जगह, एक ही आसनसे खड़े रहनेका नियम लिया। जिन्होंने प्रशंसनीय व्रत धारण किए हैं; जो कभी भोजन नहीं करते और जिनके समीपका प्रदेश वनकी लताओंसे व्याप्त हो रहा है, ऐसे वे बाहुबलीस्वामी बांम्बीके ठहरे हुए स्थानके छिद्रोंसे निकलते हुए सर्पोंसे बहुत ही भयानक लग रहे थे। जिनके फणा प्रकट हो रहे हैं, ऐसे फुँकारते हुए सर्पके बच्चोंकी उछल-कूदसे चारों ओरसे घिरे हुए, वे बाहुबली ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों उनके चरणोंके समीप विषके अंकूरे ही लग रहे हों।

कन्धों पर्यन्त लटकती हुई केशरूपी लताओंको धारण करनेवाले वे बाहुबली मुनिराज अनेक काले सर्पोंके समूहको धारण करनेवाले हरिचंदनके वृक्षका अनुकरण कर रहे हों, ऐसा लग रहा था। फूली हुई वासन्ती लता अपनी शाखारूपी भुजाओं द्वारा उनका गाढ आलिंगन कर रही थी। जिनके कोमल पत्ते विद्याधरोंने अपने हाथसे तोड़े है ऐसी वह वासन्ती लता उनके चरणों पर पड़कर सूख गयी थी, और ऐसे लग रहा था कि जाने कुछ नम्र होकर अनुनय करती कोई स्त्रीके पांवमें पड़ा हो, ऐसी अवस्था होने पर भी वे कठिन तपश्चरण कर रहे थे। जिससे उनका शरीर कृश हो गया था, और उससे वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो मुक्तिरूपी स्त्रीकी इच्छा करता हुआ कोई कामी ही हो। तपरूपी अग्निके संतापसे संतप्त हुए बाहुबलीका केवल शरीर ही खड़े खड़े नहीं सूख गया था, किन्तु दुःख देनेवाले कर्म भी सूख गये थे अर्थात् नष्ट हो गये थे।

तीव्र तपस्या करते हुए मुनिराज बाहुबलीको कभी कोई उपद्रव नहीं हुआ। वे

सब बाधाओं को सहन कर लेते थे, अत्यन्त शान्त थे, परिग्रहरहित थे और अतिशय दैदीप्यमान थे। इसलिए उन्होंने अपने गुणोंसे पृथ्वी, जल, वायु और अग्निको जीत लिया था। वे मार्गसे च्युत न होनेके लिए भूख, प्यास, शीत, गरमी, तथा डांस, मच्छर आदिके परिषह सहन करते थे। उत्कृष्ट नागन्य व्रतको धारण करते हुए मुनिराज बाहुबली इन्द्रियरूपी धूर्तोंके द्वारा भेदन नहीं किये गये थे। ब्रह्मचर्यका उत्कृष्टरूपसे रक्षा करना ही नागन्यव्रत है और यही उत्तम तप है। वे रति और अरति दोनों परिषहोंको सहन करते थे। जो स्वयं नष्ट हो जानेवाले शरीरमें निःस्पृह रहते थे और न उसमें कोई आनन्द ही मानते थे, ऐसे परमार्थ जाननेवालोंमें श्रेष्ठ बाहुबली महाराज वध और आक्रोश परिषह भी सहन करते थे। जिन्होंने उत्तम क्षमा धारण की थी, शरीरका संस्कार छोड़ दिया था और जिन्हें सुख तथा दुःख दोनों समान था, ऐसे मुनिराजने स्वेद, मल तथा तृण परिषहको भी सहन किया था। 'यह शरीर रोगोंका घर है' इस प्रकार चिन्तवन करते करते, वे धीर-वीर बुद्धिके धारक बाहुबली बड़ी कठिनतासे सहन करने योग्य रोगोंसे उत्पन्न हुई बाधाओंको भी सहन करते थे। ऐसा विचार करके वे कभी भी ज्ञानका गर्व करते नहीं थे। सदा संतुष्ट रहनेवाले बाहुबलीजीने अलाभ परिषहको जीता था तथा अज्ञान और अदर्शनसे उत्पन्न होनेवाली बाधाएँ उन मुनिराजको नहीं हुई थी।

कामदेवको जीतनेवाले उन मुनिराजने पाँच इन्द्रियोंको अनायास ही जीत लिया था। उन्होंने कामको जीत लेनेसे आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन संज्ञाओंको नष्ट की थीं। पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ, पाँच इन्द्रिय-दमन, आदि अट्ठाईस मूलगुण धारण किये थे। इनके सिवाय चौरासीलाख उत्तरगुण भी थे, वे महामुनि पालन करनेमें सचेष्ट रहते थे। उनका परिपालन करते हुए, वे मुनिराज उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त हुए थे तथा जिस प्रकार दैदीप्यमान किरणोंसे सूर्य प्रकाशमान होता है, उसी प्रकार वे तपकी दैदीप्यमान किरणोंसे प्रकाशमान हो रहे थे।

इस प्रकार तप करते हुए अतिशय शान्त रहनेवाले उन मुनिराजके माहात्म्यसे वन भी शान्त हो गया था। सो ठीक ही है, क्योंकि महापुरुषोंका संयोग ही क्रूर जीवोंमें भी शान्ति उत्पन्न कर देता है। तपके सम्बन्धसे बढ़े हुए भारी तेजसे तिर्यंचोंके भी हृदयका अन्धकार दूर हो गया था और वे परस्पर किसीसे द्रोह नहीं करते थे–अहिंसक हो गये थे।

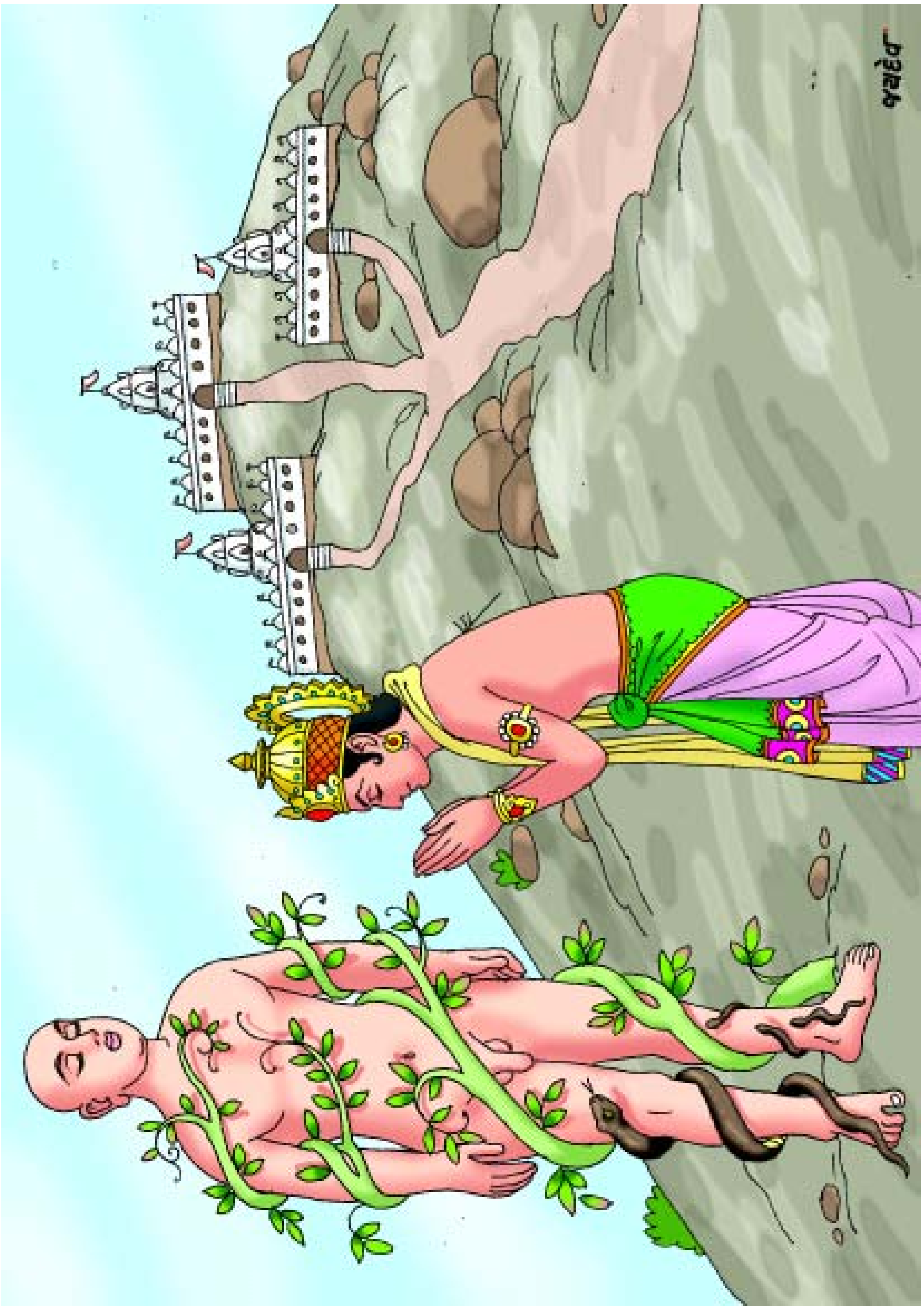

श्री बाहुबली मुनि द्वारा एक वर्षका प्रतिमायोग ध्यान, भरत द्वारा पूजा, भरत द्वारा
कैलास पर्वत पर तीन चौबीसीके जिनमंदिर बनवाना

विद्याधर लोग भी गति भंग हो जानेसे विमानसे उतरकर ध्यानस्थ मुनिराजकी बार-बार पूजा करते थे। इस प्रकार धारण किए हुए समीचीन धर्मध्यानके बलसे जिनको तपकी शक्ति उत्पन्न हुई है ऐसे वे मुनि लेश्याकी विशुद्धिको प्राप्त होते हुए शुक्लध्यानके सन्मुख हुए।

एक वर्षका उपवास समाप्त होने पर भरतेश्वरने आकर उनकी पूजा की। भरतेश्वरको पूजा करते देख बाहुबलीजीके हृदयमें रहा हुआ अति सूक्ष्म शल्य निकल गया और महामुनि बाहुबली कभी नहीं नष्ट होनेवाली केवलज्ञानरूपी उत्कृष्ट ज्योतिको प्राप्त हुए। सम्राट भरतने केवलज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेके पहले और पीछे–दोनों ही समय विधिपूर्वक उन मुनिराजकी पूजा की। केवलज्ञानसूर्यके उदय होनेके पूर्व सम्राट भरतने अपना अपराध नष्ट करनेके लिए पूजा की थी और केवलज्ञान होनेके बाद जो बड़ी भारी पूजा की थी; वह केवलज्ञानकी उत्पत्तिका अनुभव करनेके लिए की थी। उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ हो सकता है!!

सम्राट भरतने मंत्रियों, राजाओंके साथ और अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियों तथा पुरोहितके साथ उन बाहुबली मुनिराजको बड़े हर्षसे नमस्कार किया था। इस विषयमें अधिक कहाँ तक कहा जावे? संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है, कि उन्होंने रत्नोंका अर्घ बनाया था, गंगाके जलकी जलधारा दी थी, रत्नोंके दीपक चढ़ाये थे, मोतियोंसे अक्षतकी पूजा की थी, अमृतके पिण्ड़से नैवेद्य अर्पित किया था, कल्पवृक्षके टुकड़ों (चूर्णों)से धूपकी पूजा की थी, पारिजात आदि देववृक्षोंके फूलोंके समूहसे पुष्पोंकी अर्चना की थी, और फलोंके स्थान पर रत्नोंकी समस्त निधियाँ चढ़ा दी थीं। इस प्रकार रत्नमय पूजा की थी।

मुनिराज बाहुबलीके केवलज्ञानसे जिनका आसन कम्पायमान हुआ ऐसे इन्द्र आदि देवोंने आकर उनकी उत्कृष्ट पूजा की। देवोंके नगाड़े आकाशमें गम्भीरतासे बज रहे थे और कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुआ फूलोंका समूह आकाशमें छा रहा था। उनके ऊपर देवरूपी कारीगरोंके द्वारा बनाया हुआ रत्नोंका छत्र सुशोभित हो रहा था और नीचे बहुमूल्य मणियोंका बना हुआ दिव्य सिंहासन दैदीप्यमान हो रहा था। उनके दोनों ओर ऊँचाई पर चमरोंके समूह स्वयं ढुल रहे थे तथा जिसका ऐश्वर्य प्रसिद्ध है, ऐसी उनके योग्य सभाभूमि अर्थात् गन्धकुटि भी बनायी गयी थी। इस प्रकार देवोंने जिनकी पूजा

की थी और जिन्हें केवलज्ञानरूपी ऋद्धि प्राप्त हुई थी, ऐसे वे योगिराज अनेक मुनियोंसे घिरे हुए सुशोभित हो रहे जैसे वे मानों नक्षत्रोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो।

उपरोक्त प्रकारसे महाराजा भरत एवं उनकी रानियाँ सह पूरा परिवार कैलाश पर्वत पर दर्शनार्थ गये थे। वहाँ सम्राट भरतेश्वरने भगवान बाहुबली व उनके केवलज्ञानकी बड़ी भारी पूजा की। तत्पश्चात् उन्होंने उसी कैलास पर्वत पर भूत-वर्तमान-भविष्यत्‌कालके तीन चौबीसी भगवंतोंकी रत्नमय प्रतिमा सह ७२ जिनमंदिर बनवाये थे।

महान तपस्वी ऐसे श्री बाहुबली मुनिन्द्र भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

ऐसे बहुबली देखें, वनमें

ऐसे बाहुबली देखें, वनमें.....(२)
जाके राग-द्वेष नहीं तनमें.......

ग्रीष्म ऋतु शिखर के उपर.....(२)
मगन रहे ध्याननमें......१

चातुर्मास तरुतल ठाडे......(२)
बुंद सहे छिन छिन में......२

शीतमास दरिया के किनारे......(२)
धीरज धारे ध्याननमें......३

अैसे गुरुको मैं नित प्रति ध्याउं......(२)
देत ढोक चरणनमें.......४

अंजनसे निरंजन

बहुत काल पूर्व किसी नगरमें धन्वंतरी व विश्वलोम नामक दो व्यक्ति रहते थे। वे दोनों सुकृत(पुण्यरूप कार्य)के फलसे अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ नामक देव हुए। वे दोनों अच्छे मित्र थे। अतः उन दोनोंको इच्छा हुई, कि भूलोक पर धर्मनिष्ठ कहलाते धर्मी जीवोंके धर्मकी परीक्षा की जाय, कि 'सच क्या है?'

अतः उन्होंने सर्वप्रथम सुंदर कमनीय स्त्रीका रूप बनाकर, यमदग्नि नामक साधुकी परीक्षा की व उन यमदग्नि नामक साधुको तपसे चलित किया।

एक दिन उन दोनों देवोंने, मगधदेशके राजगृह नगरके स्मशानमें एक व्यक्तिको ध्यानस्थ देखा। वह व्यक्ति गृहस्थ था व गृहस्थदशामें कृष्ण चतुर्दशीका उपवास पूर्वक स्मशानमें रात्रिको ध्यानस्थ दशामें स्थित था। उसकी सुदृढ़ ध्यानदशा देखकर आश्चर्य हुआ। अतः उनमेंसे अमितप्रभदेवको उनकी ध्यानदशा देखकर उन पर अनन्य श्रद्धा उत्पन्न हुई। अतः उसने मित्र विद्युत्प्रभको कहा, कि मुनियोंकी बात तो दूर रहो; यह गृहस्थ और इतना सुदृढ ध्यान!! अतः तुम इन्हें ध्यानसे विचलित करो तो मैं जानूँ।

वे गृहस्थ राजगृह नगरके नामी श्रेष्ठी थे व धर्मात्मा थे। उनका नाम जिनदत्त सेठ था। वे प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशीको उपवास करके सारा दिन आत्म-आराधनामें बिताते थे। उस दिन भी वे इसी तरह स्मशानमें आत्म आराधना कर रहे थे।

विद्युत्प्रभ देवने उन्हें ध्यानसे चलित करने हेतु उन पर विविध, भयंकर प्रकारके उपसर्ग किए, परन्तु वे जिनदत्त सेठ ध्यानसे तनिक भी चलित नहीं हुए और दोनों ही देव सेठको नतमस्तक हो, उनके सम्यक् श्रद्धा–ज्ञान–चारित्ररूप धर्मकी मनोमन भूरी–भूरी प्रशंसा करने लगे।

उन दोनों देवोंनें सुबहमें अपना मायावीरूप छोड़कर सेठको सारा वृतांत कहा और

(१) जिनदत्त सेठ द्वारा कृष्णा चतुर्दशीको स्मशानमें ध्यान व देवों द्वारा ध्यानकी परीक्षा
(२) देवों द्वारा प्रसन्न होकर जिनदत्त सेठको आकाशगामिनी विद्याका प्रदान करना

आप जो चाहो सो मांगीए। सेठने भगवती जिनदीक्षा लेकर शीघ्र संसारदुःखसे छूटनेकी मांग की। इस पर दोनों देव बहुत ही शर्मिन्दा हुए। सेठसे कहा, कि 'इतनी तो हमारी शक्ति नहीं। यह तो मनुष्यभवमें ही हो सकता है, व वह तो महामुनि भगवंत ही दे सकते हैं। हम स्वयं भी उस ही के अभिलाषी हैं।' फिर भी विद्युत्प्रभदेवने उनके धर्मध्यानसे हुई प्रसन्नताकी अभिव्यक्ति स्वरूप जिनदत्त सेठको आकाशगामिनी विद्या प्रदान की। वह विद्या ऐसी थी, कि जिसमें बड़की पूर्वदिशाकी ओर एकसोआठ बड़की बरोह(बरगदकी जटा जैसी ड़ोरी)के नीचे, जमीन पर कई भाले(तीक्ष्ण शस्त्र)–कि जिसका नोकदार भाग ऊपर रहे– इस तरह गाड़ दिये जाते हैं, तथा उस बरोह (डोरी)से एक शिक्या (छींका) लटका दिया जाता था। अष्ट द्रव्य लेकर उस शिक्येके बीचमें बैठकर पंच नमस्कार मंत्रकी आराधना करके बँधे हुए शिक्येकी सभी बरोंह डोरी (रस्सी) छूरीसे काट डालनेसे आकाशगमन द्वारा गंतव्य स्थान पर पहुँचा जा सकता था।

इस भांति जिनदत्त सेठ अपने बगीचेके बरगदके पेड़के नीचे शिक्या बनाकर जब चाहे शिक्ये पर बैठकर इस आकाशगामिनी विद्यासे अकृत्रिम जिनालयोंके दर्शन करने जाते रहते थे।

उसी तरह एक दिन जिनदत्त सेठ आकाशगामिनी विद्या द्वारा अकृत्रिम जिनालयकी भक्तिके लिए जा रहे थे। उस समय वहाँ उस बागका बौना आदमी(माली)ने यह देखकर जिनदत्त सेठको पूछा, 'सेठजी! आप रोज़ाना सुबह-सुबह उठकर कहाँ जाते हो? वहाँ आप जाकर क्या करते हैं?

जिनदत्त सेठने कहा, 'मैं अकृत्रिम चैत्यालयके दर्शन-भक्तिके लिए जाता हूँ। वहाँ कोई चारणऋद्धिधारी मुनि भगवंत मिल जाएँ, तो उनके दर्शन-पूजन व उनके उपदेशका लाभ लेता हूँ'।

यह सुनकर उस पुरुषने कहा, 'मुझे भी यह विद्या दें, तो मैं भी रोजाना आपकी भाँति आपके साथ पुष्पादि लेकर वंदना-भक्ति करुँगा'।

तब उस सेठने विद्या सिद्ध करनेकी विधि बताई, और वे स्वयं दर्शन-पूजनादि करने उस विद्या द्वारा चले गए।

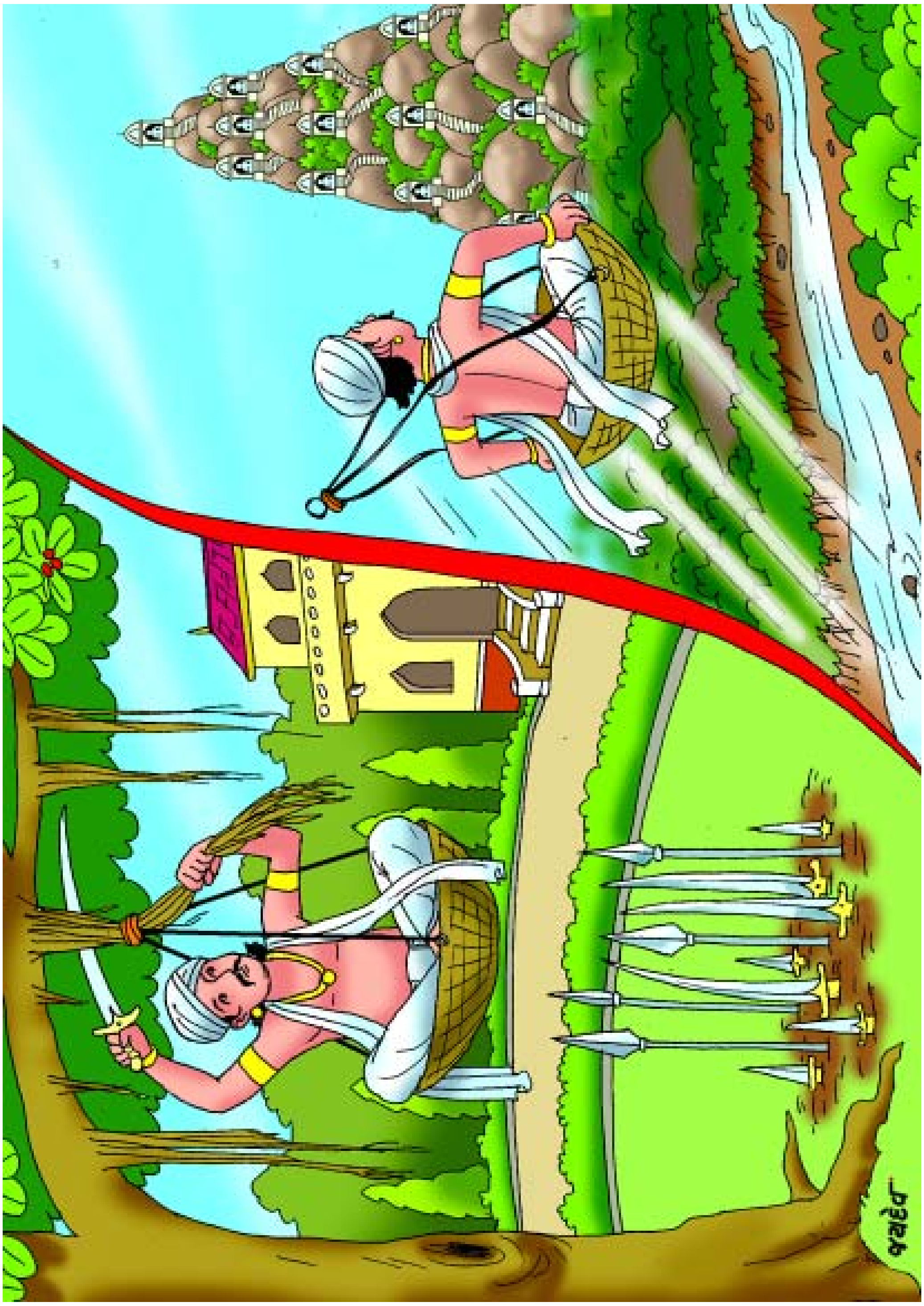

जिनदत्त सेठका आकाशगामिनी विद्या द्वारा मेरुपर्वत स्थित जिनमंदिरोंके दर्शन हेतु जाना

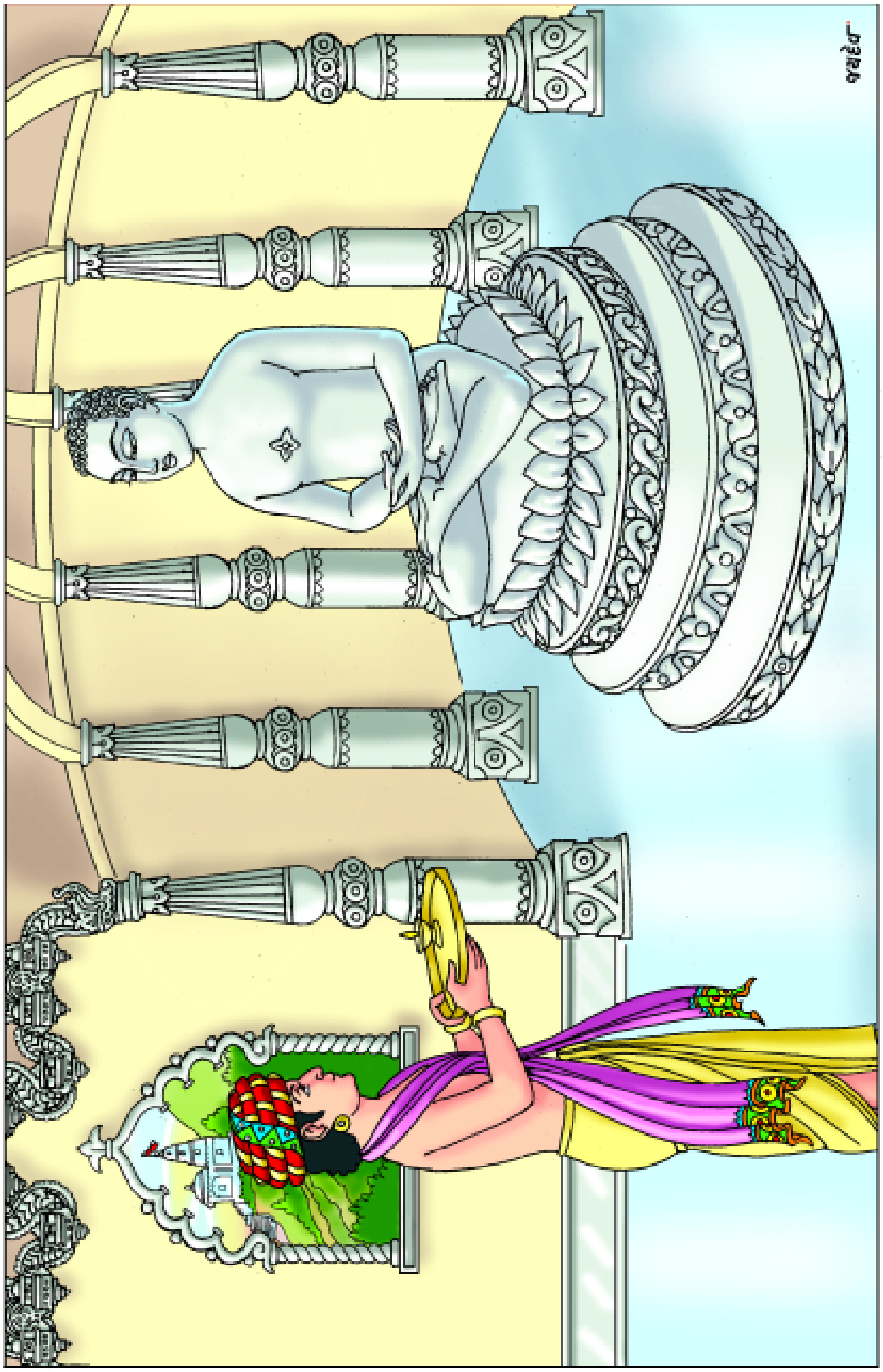

जिनदत्त सेठका मेरुपर्वत स्थित जिनमंदिरमें दर्शन-पूजा

उस व्यक्तिने भी अमावस्याकी चतुर्दशीकी रात्रिको स्मशानमें सेठके बताए अनुसार शिक्या बनाकर, नीचे तीक्ष्ण शस्त्र ऊर्ध्वमुख रखकर, चंदन-पुष्पादि लेकर शिक्येके मध्यमें बैठकर पंचनमस्कारका ध्यान करके, छुरे द्वारा शिक्येकी एक एक बरोह काटते समय उसने नीचे चमकते तीक्ष्ण हथियारोंका समूह देख, भयभीत होकर विचारा, कि 'यदि सेठके वचन असत्य निकले तो!!' वह शिक्येसे नीचे उतर गया।

फिर वापस विचार आया, कि 'सेठ इतने भद्र और सच बोलनेवाले हैं, कि 'जिसको सारा नगर जानता है। वे भला! मुझे असत्य क्यों कहेंगें? वे नहीं गिरे हैं, यह भी मैंने देखा है। मैं कोई ऐसे वैसे कार्यके लिये नहीं जा रहा हूँ, जिनेन्द्र भगवानके दर्शनार्थ ही तो जा रहा हूँ।' ऐसा सोचकर वह वापस शिक्येके मध्यमें बैठ गया। विधि अनुसार पंच नमस्कारका कायोत्सर्ग करके छूरे द्वारा एक एक बरोह काटते समय पूर्ववत् नीचे लगे तीक्ष्ण हथियारों पर नजर पड़ते ही गभराकर नीचे उतर गया। इस तरह वह शिक्येसे बार-बार उतर-चढ़ कर रहा था।

उसी समय दूसरी ओर, उस ही नगरीके राजा प्रजापालकी रानी कनकरानीका हार अंजन नामक चोरकी सुंदरी विलासीनीको अति प्रिय लगा था। और उसे पानेकी तीव्र आकांक्षासे, रात्रीको विलासीनीके पास आए अंजनचोरको—वह हार चोरी करके लानेमें समर्थ जान उसको कहा, यदि 'तू मुझे कनकरानीके गलेका हार दे तो ही तू मेरा भर्तार, अन्यथा नहीं'।

वह जानता था, कि कनकरानीका हार चोरी करना बहुत ही दुष्कर काम है। पर दूसरी ओर अंजनचोरको विलासिनी सुंदरी भी बहुत प्रिय थी। अतः उसके मोहमें उस रात्रिको वह रानीका हार चोरी करने राजमहलमें गया। अंजनचोरके पास ऐसी विद्या थी, कि उसे रात्रिके अंधेरेमें कोई देख नहीं सकता था। अतः वह आसानीसे द्वारपालों व अंगरक्षकोंसे बचकर रात्रिमें रानीके पलंग तक पहुँच गया; और रानीके गलेसे हार भी निकाल लिया।

वह हार लेकर लौट ही रहा था, कि हारकी आभाका प्रकाश ही इतना था, कि यद्यपि अंगरक्षकों व द्वारपालोंको अंजनचोर नहीं दिख रहा था; परन्तु हारकी आभासे हार चोरी होकर ले जाया जा रहा है, ऐसा भाँपते ही उन्होंने अंजनचोरका पीछा किया।

अंजनचोर द्वारा स्वयंके अदृश्य रहते हुए हारका चोरना व सिपाहीओं द्वारा उसका पीछा करना

अंजनचोर द्वारपालों आदिसे बचनेके लिए हारको वहीं फैंककर इधर-उधर लुकाता-छिपाता उस बड़के पीछे छिपा, वहाँ सुबह-सुबहमें उस बौने व्यक्तिकी करतूतें विस्मयतासे देखता रहा। फिर उसने इन करतूतोंका कारण जानने हेतु उस पुरुषसे पूछा। उस पुरुषने जिनदत्त सेठकी उस विद्या सिद्धिकी सारी बात अंजनचोरको बता दी।

अंजनचोरने बौने पुरुषसे वह मंत्र ग्रहण करके निःशंक बनकर विधिपूर्वक एकसाथ शिक्येंकी सभी बरोहोंको काट दी। उसी समय वह विद्या सिद्ध हुई। सिद्ध हुई विद्याने कहा, 'मुझे आदेश दीजीए'।

तब अंजनचोरने विद्यासे कहा, 'मुझे जिनदत्त सेठके पास ले चलो'। विद्याने अंजनचोरकी आज्ञानुसार उसे मेरुके चैत्यालयमें जिनदत्त सेठके पास ले जाकर खड़ा कर

अंजनचोरका उपकारी जिनदत्त सेठके चरणोंमें वंदना

दिआ। अंजनचोरने जिनदत्त सेठको जिनमंदिरमें ही उपकार-वशतासे नमस्कार करके अपना सारा वृतांत कहा और कहा, कि 'जिस तरह यह विद्या आपके उपदेशसे सिद्ध हुई है, वैसे ही मुझे परलोक सिद्धिके उपायका उपदेश दें, ताकि मैं अपना जीवन सफल कर सकूँ'। अतः जिनदत्त सेठ मेरुपर्वत पर नजदीकमें रहे चारणमुनिके समीप अंजनचोरको ले गए। वहाँ दोनोंने मुनिभगवंतसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय निश्चय-व्यवहाररूप रत्नत्रयधर्मका उपदेश सुना।

(वहाँ यह आश्चर्य एक देव देख रहा था। उसने पासमें बैठे मुनिराजको पूछा, कि इस अन्जनकुमारने प्रथम सुदर्शन सेठको नमस्कार किए, बादमें जिनेन्द्रदेवके दर्शन कर नमस्कार किए यह तो क्रमभंग है। तब मुनिराजने कहा, कि 'सेठका अंजनकुमार पर उपकार होनेसे उसने उन्हें प्रथम नमस्कार किया है।)

मुनिराजका उपदेश सुन सम्यदर्शन प्राप्त कर अंजनचोरने भगवती जिनदीक्षा अंगीकार की व उस ही भवमें कैलाश पर्वतसे केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गए।

इस तरह अंजनचोर दृढ़ सम्यग्दर्शन सहित सम्यक् रत्नत्रयधर्म अंगीकार करके, चोरी करनेके परिणाम बदलकर पुरुषार्थ द्वारा अपनी परिणतिको फिरानेसे मोक्ष जा सके तो हम भी जिनोक्त यथार्थ पुरुषार्थ करें तो मोक्ष जा सकते हैं। अतः वैसा पुरुषार्थ हम करें—ऐसी भावना है।

श्रीकण्ठ राजा

कई वर्षों पूर्व एक नगरमें एक व्यापारीके दो पुत्र थे। दोनों ही जिनधर्मी थे, परन्तु उसमें बड़ा भाई जिनधर्मका दृढ़ श्रद्धानी था और छोटा गलत मार्ग पर था।

एक दिन बड़ा भाई जिनमंदिरके दर्शन करने जा रहा था। उसे देख छोटेभाईने कौतुकतासे उन्हें जानेका स्थान सहज ही पूछा, 'आप कहाँ जा रहे हैं?' जिस पर बड़े भाईने कहा, कि 'जिनेन्द्रदर्शन करने जिनमंदिर जा रहा हूँ क्योंकि मैं जिनमंदिर दर्शन किये बिना आहार-पानी नहीं लेता'।

मंदिर जाते हुए बड़ा व छोटा भाई

छोटेभाईकी कोई होनहार अच्छी होनेसे वह भी साथमें मंदिर जाने हेतु तैयार हुआ। रास्तेमें छोटेभाईने बड़ेभाईको जिनमंदिर जानेका हेतु, देव-शास्त्र-गुरुका स्वरूप, उनके दर्शन-पूजाका फल आदि कई प्रश्न किये। उनके उत्तर सुन छोटेभाईको बड़े भाईके प्रति सन्मान हुआ और रोज़ाना भाईके साथ जिनमंदिर जाएगा, ऐसा मनोमन निश्चयकर ले लिया।

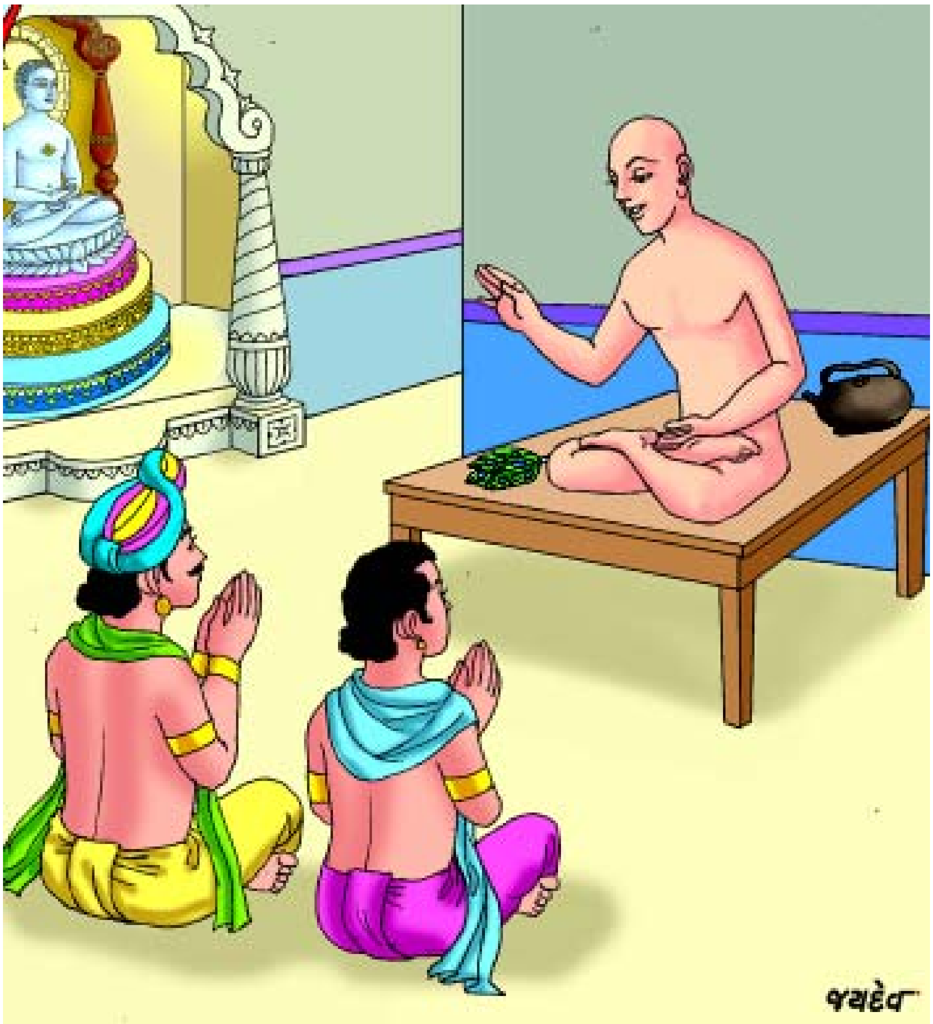

जिनमंदिरमें मुनिराजका उपदेश ग्रहण करते दोनों भाई

जिनमंदिरमें एक निर्ग्रन्थ मुनिराज भी दर्शन हेतु पधारे। दोनों भाईने उनके भावसे दर्शन किये व उनका धर्मोपदेश सुना और यथायोग्य ग्रहण किया। मुनिराजने देव-शास्त्र-गुरुका स्वरूप, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका स्वरूप व तीनोंकी एक्यतारूप मोक्षमार्गका स्वरूप व उसका फल समझाया। देशसंयम व सकल संयमका स्वरूप सुन दोनों भाईयोंने सम्यग्दर्शन सह देशसंयम धारण किया।

रास्तेमें छोटेभाईने बड़ेभाईसे कहा, कि : 'भैया! हम दोनोंमेंसे यदि आप पहले मुझे छोड़ चले जाएँ तो वहाँसे मुझे निरंतर धर्ममें जागृत करते रहना। कहीं वापस

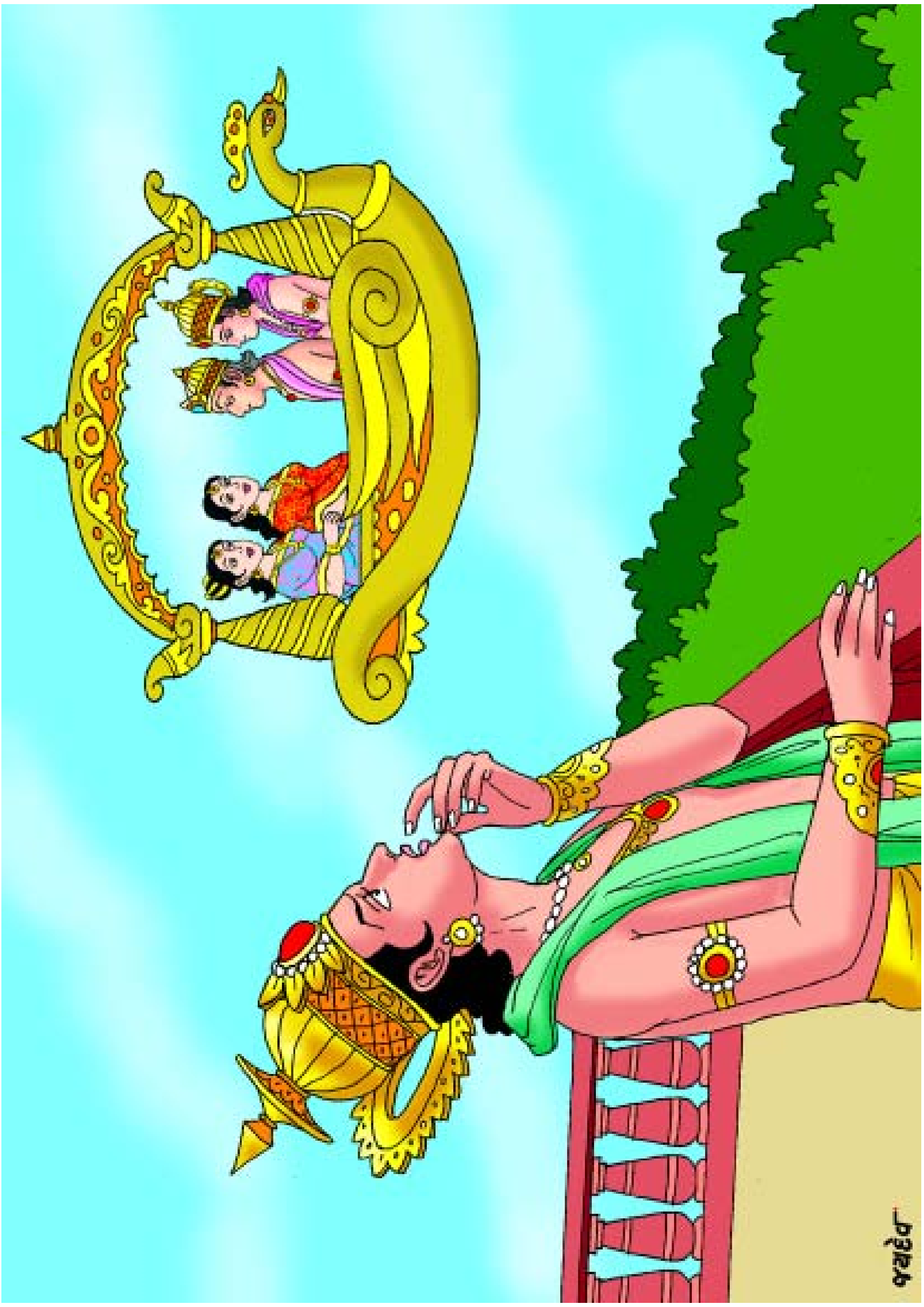

श्रीकंठ राजा द्वारा देवरूप हुए अपने पूर्वभवके बड़ेभाईको विमानमें जाते हुए पहचान लेना

प्रमाद ग्रथित न हो जाऊँ।' छोटेभाईके मित्रादि जब उसे गलत लाईन पर वापस चलनेका आग्रह करने लगे तो छोटेभाईने उनका हृदय भी परिवर्तन कर उन्हें भी तत्त्वज्ञान द्वारा रत्नत्रयरूप मार्ग पर चढ़ाया।

इस भांति दोनों भाई यहाँ धर्म आराधनापूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। उसमें वहाँसे बड़ेभाई देव हुए और छोटाभाई राजा श्रीकण्ठ हुए।

अष्टाह्निका पर्वमें एक बार राजा श्रीकण्ठ अपने महलकी छत पर टहल रहे थे। साथमें उनके दिवानजी भी थे। उसी समय देवोंके विमान नंदीश्वरद्वीपमें धर्म आराधना हेतु जा रहे थे। उनके विमानोंका आवाज श्रीकण्ठ राजाको सुनाई दिया तो उन्होंने इसकी जानकारीके लिए दिवानजीसे पूछा, उन्होंने बताया, कि देवगण विमानमें बैठकर 'अष्टाह्निका पर्वमें नंदीश्वरद्वीपमें आराधना हेतुसे जा रहे हैं'। वहाँ राजा श्रीकण्ठको पूर्वभवकी स्मृति हुई और वह अपना भाई जो देव हुआ था और नंदीश्वरमें आराधना हेतु जा रहा था उसे पहचान गया। उसे विमान रोकने हेतु मनमें विचार किया। देव भी अपने पूर्वभवके छोटेभाईको पहचान गया व पूर्वभवमें भैयाको दी धर्म संबोधनके वचन हो आई। अतः वह वहाँ आया व अष्टाह्निका पर्व हेतु नंदीश्वरद्वीपमें आराधनाकी बात बताई।

श्रीकंठ राजाका प्रधान व रानीओंके साथ विमानमें बैठ नंदीश्वर द्वीपकी ओर जाना

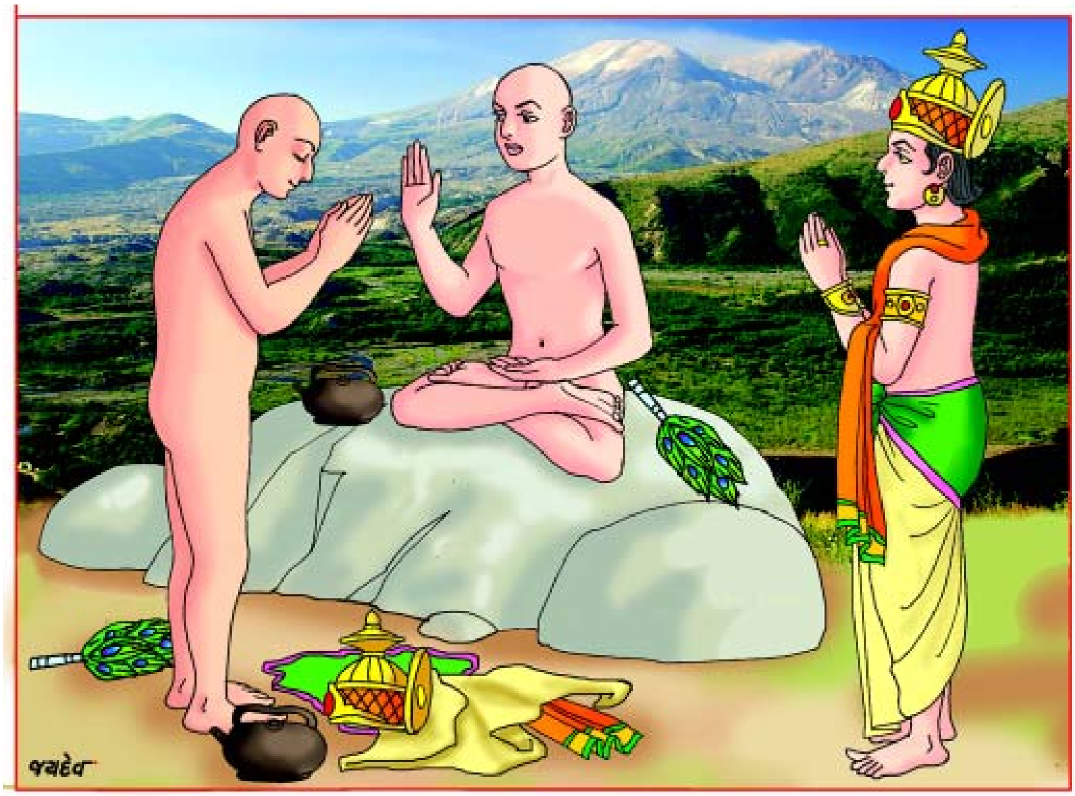

मानुषोत्तर पर्वतके उसपार मनुष्य नहीं जा सक्ते होनेसे श्रीकंठ राजाका मानुषोत्तर पर्वतके वहाँ वैराग्य प्राप्त होनेसे दीक्षा ग्रहण

तब राजा श्रीकण्ठने देवके साथ नंदीश्वर जानेकी मांग की। अतः दोनों भाई अपने विमानमें दिवान सह बैठ नंदीश्वरद्वीप जाने उद्यत हुए।

जहाँ मानुषोत्तर पर्वत आया। वहाँ विमान रुक गया। यह देख राजा श्रीकण्ठको ज्ञात हुआ, कि मनुष्य मानुषोत्तर पर्वतसे आगे नहीं जा सकते, इस विचारसे उन्हें वहीं वैराग्य हो गया और वहीं पर उन्होंने विराजित मुनि भगवंतके पास जिनदीक्षा धारण की व उग्र तप आराधन करने लगे।

युवराज श्रेयांसकुमार द्वारा आहारदान

(भगवान ऋषभदेव और श्रेयांसकुमारके पूर्वभव)

भव नं.	भगवान ऋषभदेव	श्रेयांसकुमार (राजा)
१०	महाबल राजा	---
९	ललितांग देव	स्वयंप्रभादेवी
८	राजा वज्रजंघ	श्रीमती रानी
७	भोगभूमिका जीव आर्य	भोगभूमिका जीव आर्या (पति-पत्नी)
	(इस भवमें प्रीतिंकर मुनिराज (पूर्वके स्वयंबुद्ध मंत्रीका जीव)के उपदेशसे दोनोंको सम्यक्त्वकी प्राप्ति)	
६	ईशान स्वर्गमें श्रीधर देव	ईशान स्वर्गमें स्वयंबुद्ध नामक देव
५	राजा सुविधिकुमार	राजा सुविधिके पुत्र केशव
४	अच्युत स्वर्गमें इन्द्र	अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र
३	वज्रसेन तीर्थंकरका पुत्र (इस भवमें मुनि बनकर तीर्थंकर प्रकृतिका बंध बांधना, उपशम श्रेणी द्वारा ११वें गुणस्थानकी पूर्ण वीतराग दशाका आनंद लेकर सप्तम गुणस्थानमें आना, अन्तमें समाधिमरण)	वज्रनाभि चक्रवर्तीका भाई धनदेव (वज्रनाभि चक्रवर्तीके १४ रत्नोंमें गृहपति नामक तेजस्वी रत्न)
२	सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र	सर्वार्थसिद्धिमें ऋषभदेवके जीवके साथ ही अहमिन्द्र
१	ऋषभदेव	युवराज श्रेयांसकुमार

जम्बूद्वीपके सुमेरु पर्वतसे पूर्वकी ओर विदेहक्षेत्रमें एक पुष्कलावती नामक देश है। उसकी राजधानी उत्पलखेट नगरी है। उस समय वहाँ राजा वज्रबाहु राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम वसुन्धरा था। राजा वज्रबाहु वसुन्धरा रानीके साथ इन्द्र-इन्द्राणीकी तरह भोग भोगते हुए आनन्दसे रहते थे। ललितांग देव स्वर्गसे चयकर इन्ही राजदम्पतिके यहाँ वज्रजंघ (भगवान ऋषभदेवका पूर्वभव-८) नामका पुत्र हुआ। वज्रजंघ अपनी मनोरम चेष्टाओंसे सभीको हर्षित करता था। युवावस्थाको प्राप्त होकर भी उसने अपना विवाह नहीं किया था, क्योंकि उसका मन स्वयंप्रभा देवीमें ही आसक्त था। इसलिए दूसरी स्त्रीसे प्रेम नहीं करता था।

स्वयंप्रभा(श्रेयांसकुमारका पूर्वभव-९)—जिसे, कि (भगवान ऋषभदेवका पूर्वभव-९) ललितांग देव छोड़कर चला आया था—उसे प्राणनाथ ललितांग देवके मरने पर बहुत खेद हुआ, वह तरह-तरहके विलाप करने लगी। यह देख दृढवर्मा नामके देवने जो, कि ललितांगदेवका घनिष्ठ मित्र था, उसे खूब समझाया और उत्तम कार्योंको करनेका उपदेश दिया। उसके उपदेशसे स्वयंप्रभाने पति विरहसे उत्पन्न दुःखको शान्त किया। अपने शेष जीवनके छः माह जिन-पूजन, नित्य-वन्दन आदि शुभ कर्मोंमें व्यतीत किये। मृत्यु के समय पंच परमेष्ठीका ध्यान करती हुई स्वयंप्रभाको देवी-पर्यायसे निष्कृति मिली।

जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहक्षेत्रमें पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। राजा वज्रदन्त उसका पालन करते थे। उनकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीवती था। स्वयंप्रभादेवी स्वर्गसे चयकर इन्हीं राज-दम्पत्तिके वहाँ श्रीमती(श्रेयांसकुमारका पूर्वभव-८) नामकी पुत्री हुई। श्रीमतीकी सुन्दरता देखकर लोग कहा करते थे, कि इसे ब्रह्माने चन्द्रमाकी कलाओंसे बनाया है। एक समय श्रीमती छतके ऊपर रत्नोंके पलंग पर सो रही थी। उसी समय वहाँके आकाशमें 'जय-जय' शब्द करते हुए बहुतसे देव निकले। वे देव, पुण्डरीकिणीपुरीके किसी उद्यानमें विराजमान यशोधर महामुनिके केवलज्ञान महोत्सवमें शामिल होनेके लिए जा रहे थे। उन देवोंके आगे हजारों बाजे बज रहे थे, जिनके गम्भीर नाद सब ओर गूंज रहे थे।

देवोंकी जयजयकार और बाजोंकी उच्च ध्वनिसे श्रीमतीकी नींद खुल गई, नींद खुलते ही उसकी दृष्टि देवों पर पड़ी, जिससे उसे उसी समय अपने पूर्वभवोंका स्मरण हो आया। अब ललितांग देव उसकी आँखोंके सामने घूमने लगा। वह बार-बार

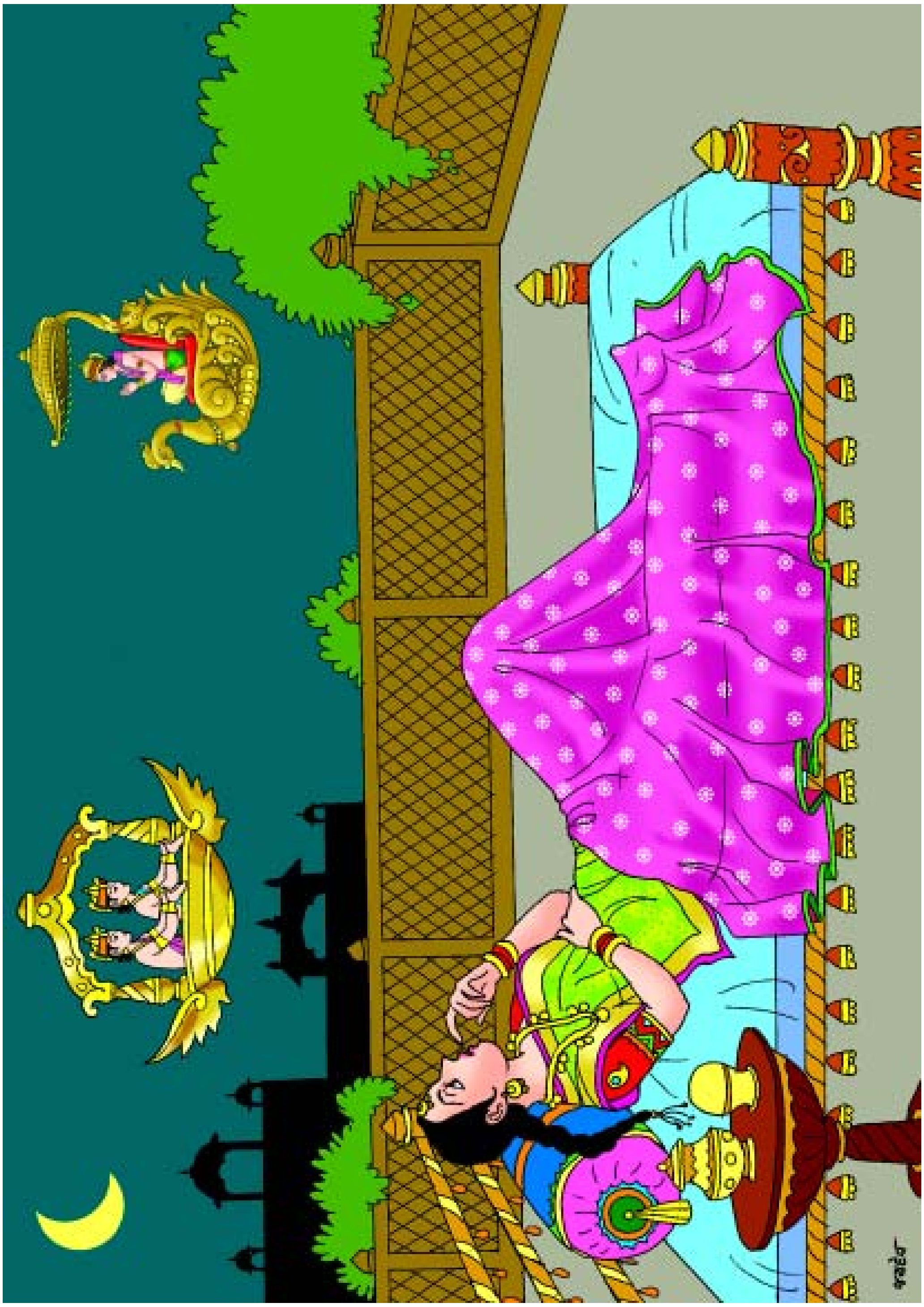

महलकी छत पर सोई हुई कुंवरी श्रीमतीको देवोंके जय-जय ध्वनि सुनकर पूर्वभवका स्मरण

ललितांगदेवका स्मरण करके विलाप करने लगी और विलाप करती-करती मूर्च्छित भी हो गयी। सखीयोंने शीतोपचार कर सचेत किया और उससे मूर्च्छाका कारण पूछा, तब वह चूपचाप रही। जब लक्ष्मीवती और वज्रदन्तको श्रीमतीकी इस अवस्थाका पता चला, तब वे दौड़े हुए उसके पास आये। उन्होंने उससे मूर्च्छित होनेका कारण पूछा, पर उसने कुछ नहीं कहा, केवल ग्रह-ग्रस्तकी तरह चारों ओर निहारती रही। कुछ देर बाद राजा वज्रदन्त समझ गये, कि इसके दुःखका कारण पूर्व-भवका स्मरण है और कुछ नहीं। इसके बाद श्रीमतीको समझानेके लिए एक पण्डिता नामकी धायको नियुक्त कर राजा और रानी अपने-अपने स्थान पर चले गये।

श्रीमतीके पाससे वापिस आते ही राजा वज्रदन्तको पता चला, कि आयुधशालामें चक्ररत्न प्रकट हुआ है और नगरके बाह्य उद्यानमें यशोधर महामुनिको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है। राजा प्रथम यशोधर महामुनिके ज्ञानोत्सवमें शामिल होनेके लिए गये और अपना जन्म सफल माना। वहाँ विचित्र बात यह हुई थी, कि राजा वज्रदन्तने ज्यों ही मुनिराजको प्रणाम किया, त्यों ही उन्हें अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था। अवधिज्ञानके प्रतापसे राजा वज्रदन्त अपने तथा श्रीमतीके समस्त पूर्वभव स्पष्टरूपसे जान गये थे। जिससे वे श्रीमतीके विषयमें निश्चिंत हो गये। मुनिराजके पाससे वापिस आकर चक्रवर्ती राजा दिग्विजयके लिए गये।

श्रीमतीके पिता वज्रदन्त चक्रवर्ती जो दिग्विजयके लिए गये थे। अब लौटकर वापिस आ गये। मौका पाकर वज्रदन्त श्रीमतीको अपने पास बुलाकर कहने लगे, कि प्यारी बेटी! मुझे यशोधर महामुनिराजके प्रतापसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है। इसलिए मैं अपने, तुम्हारे और तुम्हारे प्रियपति (ललितांगदेव)का पूर्वभव भी जानने लगा हूँ। मैंने यह भी जान लिया है, कि तुम्हें देवोंको देखनेसे अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया है, जिससे तुम अपने हृदयवल्लभ ललितांगदेवका बारम्बार स्मरण कर दुःखी हो रही हो। अब निश्चिंत होओ और पहलेकी तरह आनन्दसे रहो। तुम्हारा पति ललितांग देव षुष्कलावतीदेशके उत्पलखेट नगरमें रहनेवाले राजा वज्रबाहु और रानी वसुन्धराके वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ है। उसके साथ तुम्हारा शीघ्र ही विवाह-सम्बन्ध होनेवाला है।इसी सिलसीलेमें राजा वज्रदन्तने अपने, श्रीमतीके और वज्रजंघके कितने ही पूर्व-भवोंके

वृत्तान्त सुनाये। जिन्हें सुनकर श्रीमतीको अपार हर्ष हुआ।

इधर राजा वज्रदन्त चक्रवर्तीकी, राजा वज्रबाहु आदिसे रास्तेमें भेंट हो गई। चक्रवर्ती अपने बहनोई राजा वज्रबाहु, बहिन वसुन्धरा और भगिनीपुत्र बज्रजंघको बड़े आदर सत्कारके साथ ले आये। जिसके फलस्वरूप शुभ मुहूर्तमें बज्रजंघ और श्रीमतीका विधिपूर्वक पाणीग्रहण हो गया। इसी बीच राजा वज्रबाहुने अपनी पुत्री अनुन्दरीका विवाह चक्रवर्तीके ज्येष्ठ पुत्र अमिततेजके साथ कर दिया। जब बज्रजंघ अपने घर वापिस जाने लगे, तब चक्रवर्तीने हाथी, घोडा, सोना, चांदी, मणि, मुक्ता आदि बहुमूल्य दहेज देकर उनके साथ अपनी पुत्री श्रीमतीको बिदा कर दिया। उस समय राजा बज्रजंघ और उनकी नवविवाहिता पत्नीके शुभागमनके उपलक्ष्यमें उत्पलखेट नगरी खूब सजाई गई थी। महलोंके शिखरों पर कई रंगोंकी ध्वजाएँ फहरा रही थीं और राजमार्ग मणियोंकी बन्दनमालाओंसे विभूषित किये गये थे। धीरे-धीरे समय बीतता गया। इसी बीचमें क्रम-क्रमसे श्रीमतीके पचास युगल अर्थात् सौ पुत्र हुए। उन सबसे राजा वज्रबाहु और बज्रजंघ आदिने अपना गृहस्थ जीवन सफल माना था।

एक समय बज्रबाहु मकानकी छत पर बैठे हुए आकाशकी सुषमा देख रहे थे।

महलकी छत परसे मेघमंडलको विलिन होते देख विचारमग्न राजा वज्रबाहु

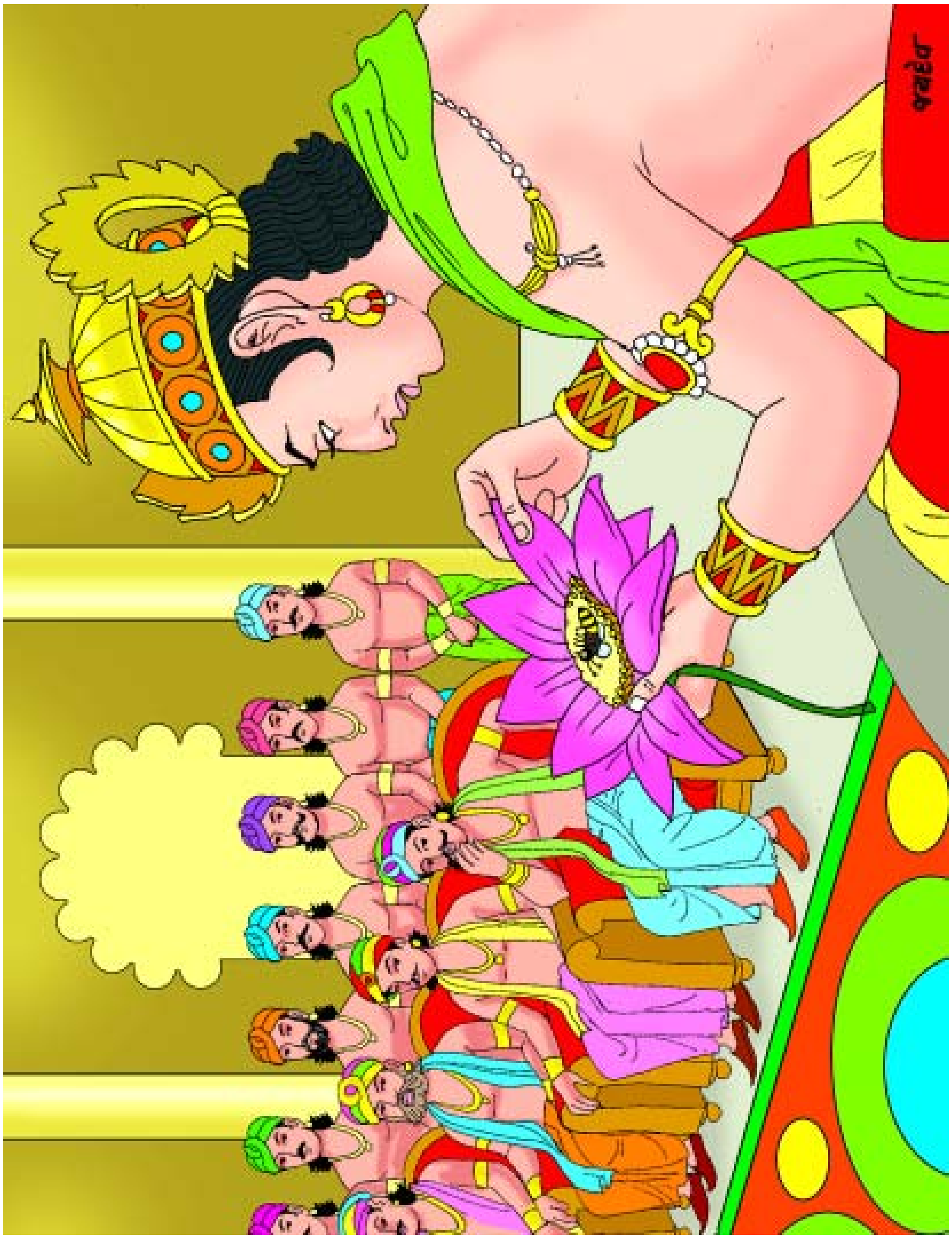

माली द्वारा मिले कमलको खोलते मृतप्राप्त भौंरेको देख वज्रदंत राजाका वैराग्य

उस समय वहाँ उन्होंने एक क्षणमें विलीन होते हुए मेघ खण्डको देखा, देखते ही अन्तरङ्ग नेत्र खुल गये और वे सोचने लगे, कि 'संसारके सभी पदार्थ इसी मेघ-खण्डकी भांति क्षणभंगुर हैं।' मैं इस राज्यको स्थिर समझकर व्यर्थ ही इसमें विमोहित हो रहा हूँ—ऐसा सोचते उदासीन हो गये और बहुत जल्दी ही बज्रजंघको राज्य समर्पण कर वनमें जाकर किन्हीं आचार्यके समीप भगवती जिनदीक्षा लेकर तप करने लगे। उनके साथ श्रीमतीके सौ पुत्र, पण्डिता सखी एवं अनेक राजाओंने भगवती जिनदीक्षा / अर्जिकाव्रत ग्रहण किआ। उधर मुनिराज बज्रबाहु कुछ समयके पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये और इधर पिता तथा पुत्रोंके विरहसे शोकातुर राजा वज्रजंघ नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे।

एक दिन चक्रवर्ती राजा वज्रदन्त राजसभामें बैठे थे, कि मालीने उन्हें एक कमलका फूल अर्पित किया। ज्यों ही उन्होंने निमीलित कमलको विकसानेका प्रयत्न किया, त्यों ही उस कमलमें रुके हुए एक मृत भौंरे पर उनकी दृष्टि पड़ी। वह भौंरा सायंकालके समय कमलके भीतर बैठा हुआ था। अचानक सूर्य अस्त हो गया, जिससे वह उसीमें बन्द होकर मर गया था। उसे देखते ही चक्रवर्ती सोचने लगे, कि जब यह भौंरा एक नासिका इन्द्रियके विषयमें आसक्त होकर मर गया है, तब जो मनुष्य रात-दिन पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त हो रहे हैं, वे क्यों न भौरेकी तरह मृत्युको प्राप्त होवेंगे? सच है–संसारमें इन्द्रियोंके विषय ही प्राणियोंको दुःखी किया करते हैं। मैंने जीवनभर विषय भोग भोगे, पर कभी सन्तुष्ट नही हुआ।' इत्यादि विचार कर भगवती जिन-दीक्षा धारण करनेका दृढ संकल्प कर लिया। चक्रवर्तीने अपने बड़े पुत्र अमिततेजको राज्य देना चाहा, पर उसने और उसके छोटे भाईने राज्य लेनेसे इन्कार कर दिया। तब उन्होंने अमिततेजके पुत्र पुण्डरीकको जिसकी आयु उस समय केवल छ माहकी थी, राज्य दे दिया और स्वयं अनेक राजाओं, पुत्रों तथा पुरवासियोंके साथ दीक्षित हो गये।

चक्रवर्ती और अमिततेजके विरहसे साम्राज्ञी लक्ष्मीवती तथा अनुसुन्दरी आदिको बहुत दुःख हुआ। कहाँ चक्रवर्तीका विशाल राज्य और कहाँ छ माहका अबोध बालक पुण्डरीक! अब राज्यकी रक्षा किस तरह होगी? इत्यादि विचार कर लक्ष्मीवतीने दामाद

बज्रजंघको पत्र लिखा और पिटारेमें बन्द कर चिन्तामति तथा मनोगति नामक दूतोंके द्वारा उनके पास भेज दिया। जब राजा बज्रजंघने पिटारा खोलकर उसमें रखे पत्रको पढ़ा, तब उन्हें बहुत दुःख हुआ।

श्रीमतीके दुःखका तो पार ही नहीं रहा। वह पिता व भाईका स्मरण कर विलाप करने लगी। वज्रजंघने श्रीमतीको धीरज बंधाया और 'मै आता हूँ' कह कर उन विद्याधर दूतोंको वापिस भेज दिया। कुछ समय बाद राजा वज्रजंघ और श्रीमतीने पुण्डरीकिणीकी ओर प्रस्थान किया। उनके साथ महामंत्री, पुरोहित, सेठ धनमित्र और सेनापति थे। इन सबके साथ हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादे आदिसे भरी हुई विशाल सेना थी। चलते-चलते राजा वज्रजंघ किसी सुन्दर सरोवरके पास पहुँचे। इतनेमें 'यदि वनमें आहार मिलेगा तो लेवेंगे, गाँव नगर आदिमें नहीं'। ऐसी प्रतिज्ञा कर दो मुनिराज आकाशमें विहार करते हुए वहाँसे निकले। जब उन मुनियों पर राजा वज्रजंघकी दृष्टि पड़ी, तब उन्हें भक्ति सहित पड़गाहा और श्रीमतीके साथ शुद्ध सरस आहार दिया।

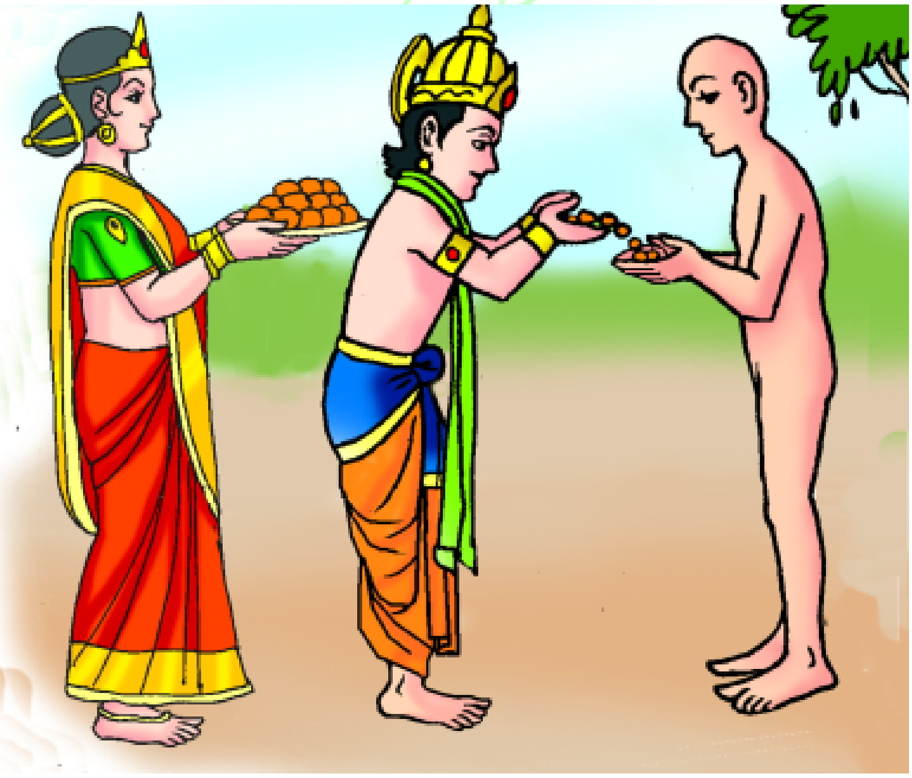

राजावज्रजंघ व रानी श्रीमती द्वारा जंगलमें मुनिराजको आहारदान

जब आहार लेकर मुनिराज वनकी ओर विहार कर गये, तब राजा वज्रजंघसे उनके पहरेदारने कहा, कि महाराज! ये युगल मुनि आपके सबसे लघु पुत्र हैं। आत्म-शुद्धिके लिए सदा वनमें रहते हैं। यहाँ तक, कि आहारके लिए भी नगरमें नही जाते। यह सुनकर राजा वज्रजंघ और श्रीमतीके शरीरमें हर्षके रोमांच निकल आये। वे दोनों तत्क्षण उसी ओर गये, जिस ओर मुनिराज गये थे।

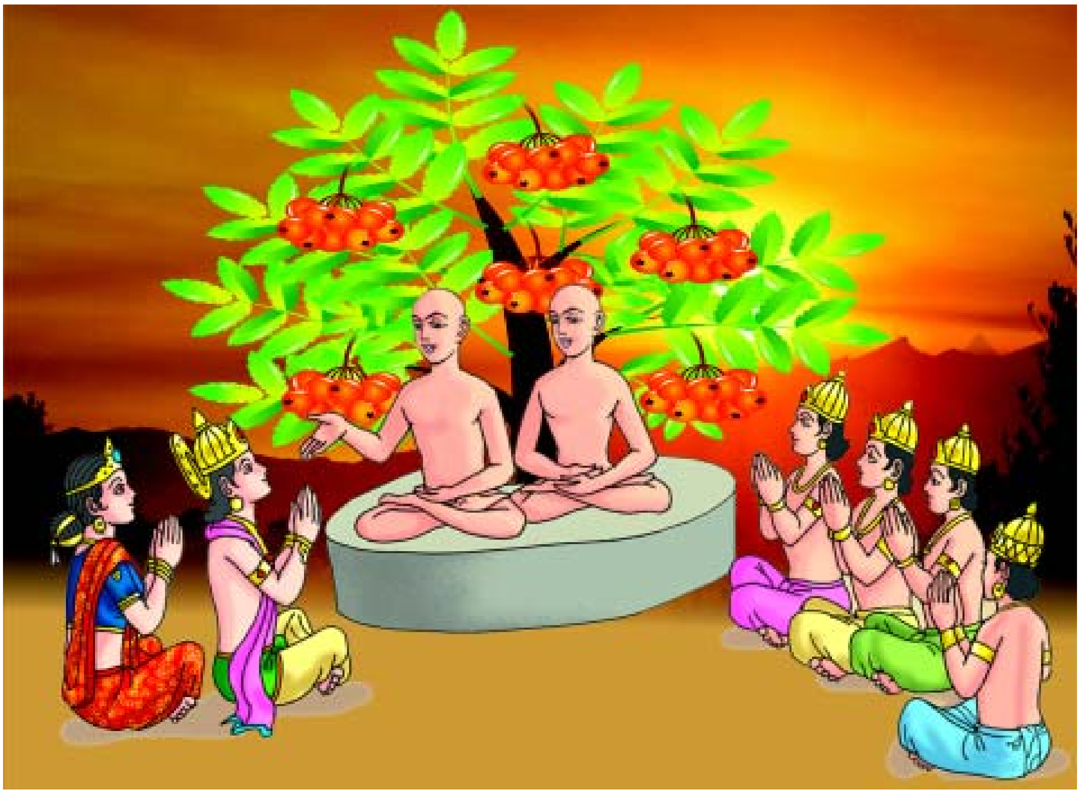

निर्जन वनमें बैठे मुनि युगलसे राजदंपति व उनके मित्र द्वारा उपदेश सुनना

निर्जन वनमें एक शिला पर बैठे हुए मुनि-युगलको देखकर राज-दम्पतिके हर्षका पार नहीं रहा। राजा-रानीने भक्तिसे मुनिराजोंके चरणोंमें अपना सिर झुका दिया तथा विनयपूर्वक बैठकर, उनसे श्रावक-धर्मका व्याख्यान सुना। इसके बाद अपने और श्रीमतीके पूर्व-भव सुनकर राजा वज्रजंघने पूछा–हे मुनिराज! ये मतिवर, आनन्द, धनमित्र और अकम्पन मुझसे बहुत प्यार करते हैं। मेरा भी इनमें अत्यधिक स्नेह है, इसका

क्या कारण है? उत्तरमें मुनिराज बोले–'राजन्! अधिकतर पूर्व-भवके संस्कारोंसे ही प्राणियोंमें परस्पर स्नेह या द्वेष रहा करता है। आपका भी इनके साथ पूर्व-भवका सम्बन्ध है।

बहुत वर्षों पश्चात्, जंबूद्वीपके कुरुजांगल देशके हस्तिनापुरमें राजा सोमप्रभ राज्य करते थे। वे बड़े ही धर्मात्मा थे, उनके छोटे भाईका नाम श्रेयांसकुमार था। यह श्रेयांसकुमार भगवान आदिनाथके वज्रजंघ (नामक पूर्व) भवमें श्रीमतीका जीव था, जो क्रम-क्रमसे आर्या, स्वयंप्रभ देव, केशव, अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र, धनदेव आदि होकर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुआ था और वहाँसे चयकर श्रेयांसकुमार हुआ था। एक दिन रात्रिके पिछले प्रहरमें श्रेयांसकुमारने अत्यन्त ऊँचा मेरु पर्वत, शाखाओंमें लटकते हुए भूषणोंसे अलंकृत सुन्दर कल्पवृक्ष, मूंगाके समान लाल-लाल केशोंसे शोभायमान सिंह, अपनी सींगों पर मिट्टी लगाया हुआ बैल, चमकता हुआ सूर्य, किरणवाला चन्द्रमा, लहराता हुआ समुद्र और अष्ट मंगल द्रव्योंको लिए हुए व्यन्तर देव स्वप्नमें देखे।

सबेरा होते ही उसने अपने पुरोहितसे ऊपर कहे हुए स्वप्नोंका फल पूछा। पुरोहितने निमित्तज्ञानसे विचार कर कहा, कि मेरु पर्वतके देखनेसे उसके समान उन्नत कोई महापुरुष अपने शुभागमनसे आपके भवनको अलंकृत करेगा और बाकीके स्वप्न उन्हीं महापुरुषके गुणोंकी उन्नति बतला रहे हैं। पुरोहितके मुखसे स्वप्नोंका फल सुनकर राजा सोमप्रभ और श्रेयांसकुमार–दोनों भाई हर्षके मारे फूले न समाये। प्रातःकाल समयके स्वप्न शीघ्र ही फल देते हैं। पुरोहितके इन वचनोंने तो उन्हें और भी हर्षित बना दिया था।

राजभवनमें बैठे हुए दोनों भाई उस महापुरुषकी प्रतिक्षा कर ही रहे थे, कि इतनेमें महा मुनि भगवान आदिनाथ ईर्या-समितिसे विहार करते हुए हस्तिनापुर आ पहुँचे। जब वे राज-भवनके पास आये, तब सिद्धार्थ नामक द्वारपालने राजा सोमप्रभ और युवराज श्रेयांसकुमारको उनके आनेकी सूचना दी। द्वारपालके मुखसे भगवान आदिनाथके आगमनका शुभ समाचार सुनकर दोनों भाई दौड़े हुए आये और उन्हें प्रणाम कर बहुत ही आनन्दित हुए। युवराज श्रेयांसकुमारने ज्यों ही भगवान आदिनाथका दिव्यरूप देखा, त्यों ही उन्हें जाति-स्मरण हो आया। अपना व भगवान आदिनाथका

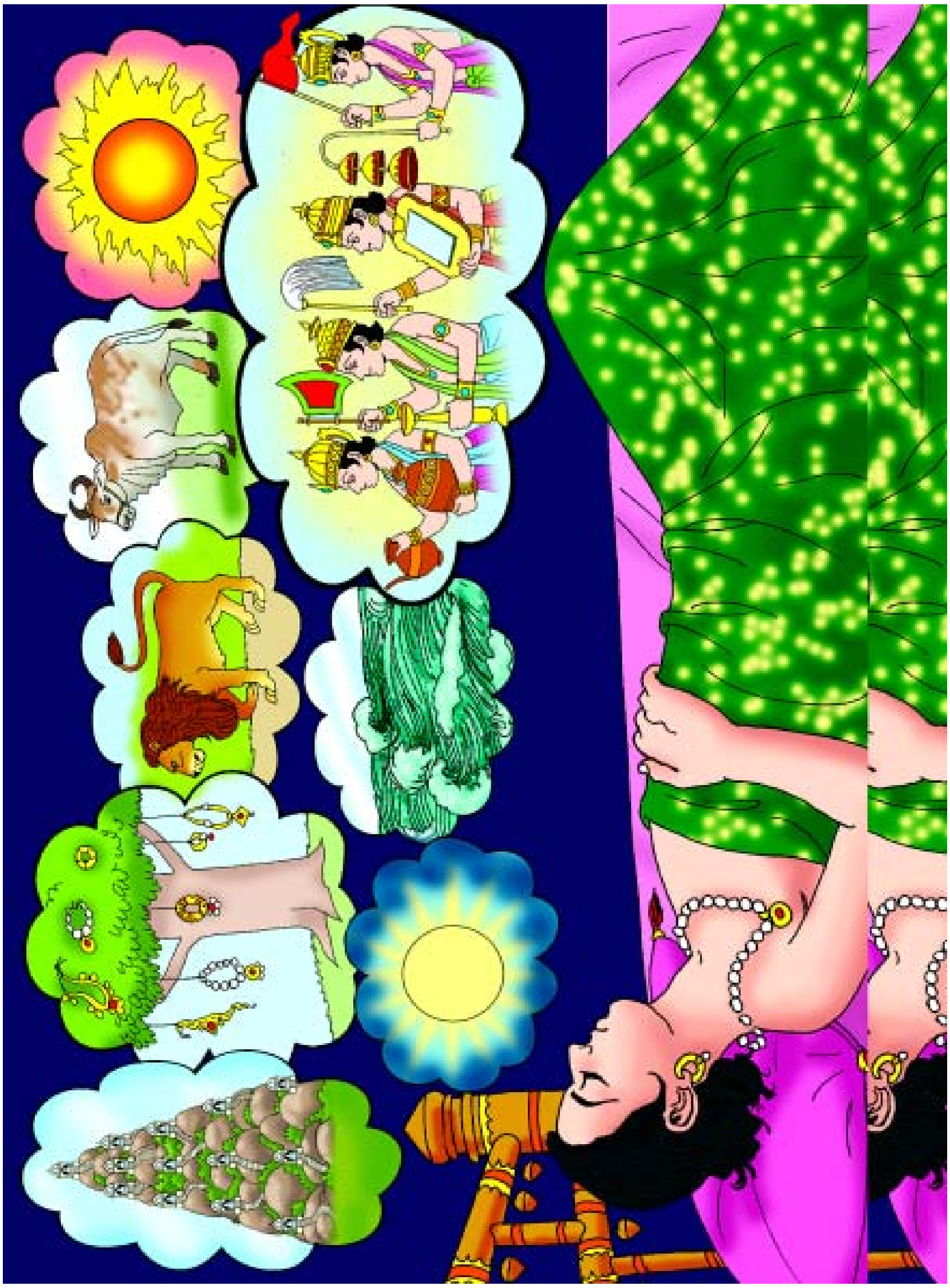

राजा श्रेयांसकुमारको रात्रीमें स्वप्न आना जिसके फलस्वरूप महापुरुषके दर्शन होना

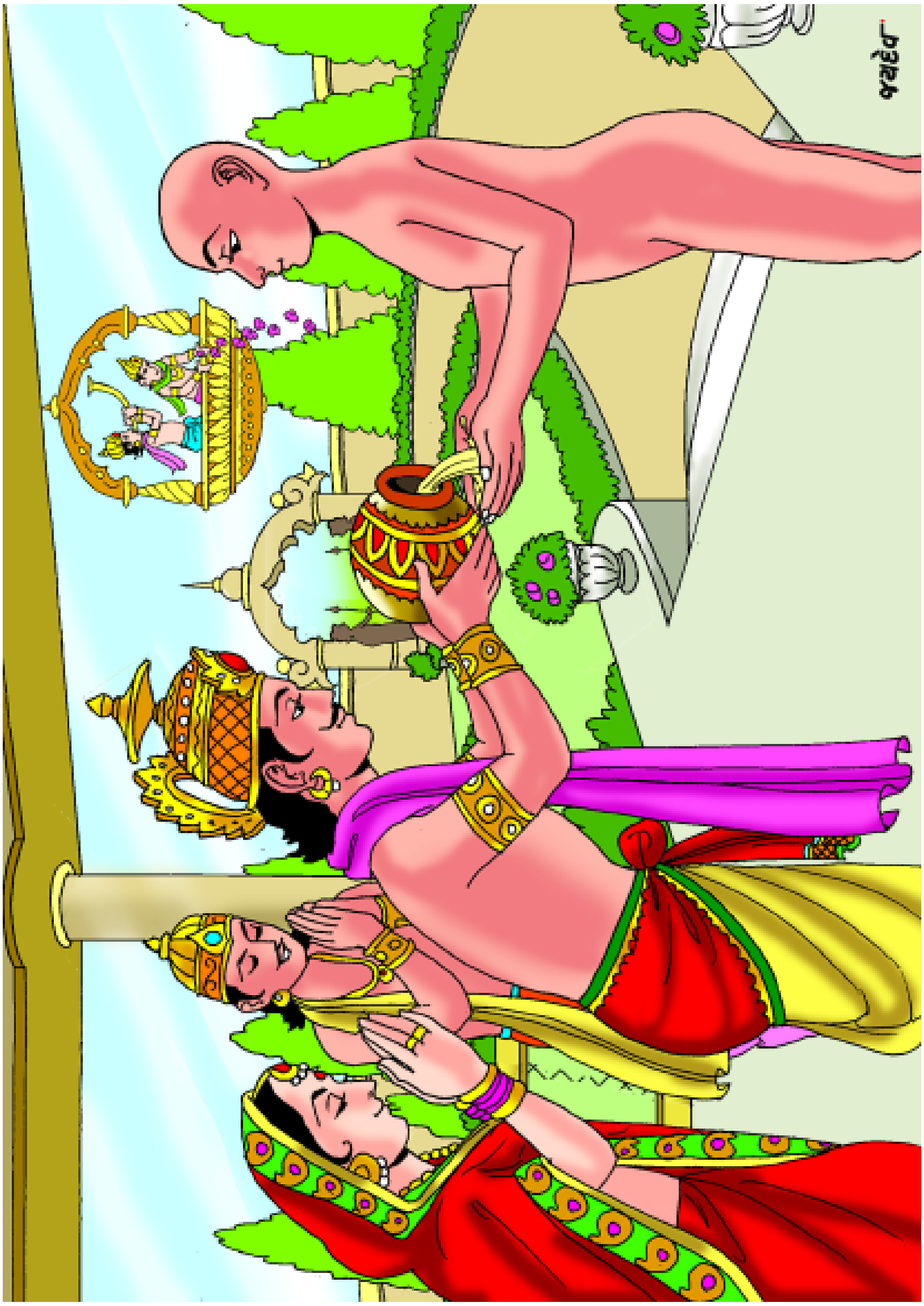

राजा सोमप्रभके साथ युवराज श्रेयांसकुमार व रानी द्वारा ऋषभमुनिको ईक्षुरसका आहारदान व देवों द्वारा पंचाश्चर्य

पूर्व भव ज्ञात हुआ। श्रीमती और बज्रजंघके रूपमें समस्त वृत्तांत उनकी आँखोंके सामने ज्योंका त्यों झूलने लगा। पुण्डरीकिणीपुरीको जाते समय रास्तेमें सुंदर सरोवरके किनारे जो मुनि-युगलके लिए आहार दिया था, वह भी युवराज श्रेयांसकुमारको ज्योंका त्यों याद हो आया। यह प्रातःकालका समय आहार देने योग्य है, ऐसा विचार कर, उन्होंने नवधा भक्तिपूर्वक उन्हें पडगाहा और श्रद्धा, तुष्टि आदि गुणोंसे युक्त होकर आदि मुनिन्द्र वृषभनाथको आहार देनेके लिए भीतर ले गये। वहाँ उसने राजा सोमप्रभ और उनकी स्त्री लक्ष्मीमतीके साथ भगवान ऋषभदेवके पाणिपात्रमें इक्षुरसकी धाराएँ अर्पित कीं। इस पवित्र आहारदानसे प्रभावित होकर देवोंने आकाशसे रत्नोंकी वर्षा की, दुन्दुभि बाजे बजाए, पुष्प वर्षाए और जय-जय ध्वनिके साथ 'अहो! दानम्, अहो! दानम्' कहते हुए उत्तम दानकी प्रशंसा की। उस समय समस्त दिशाएँ निर्मल हो गई थीं। मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगा था। महा मुनीन्द्र वृषभेश्वरके लिए दान देकर दोनों भाईयोंने अपने-आपको कृतकृत्य समझा। बहुतोंने इस दानकी अनुमोदना की।

आहार लेनेके बाद भगवान वृषभदेव वनकी ओर विहार कर गये। उस युगमें सबसे पहले दानकी प्रथा युवराज श्रेयांसकुमारने ही चलाई थी; इसलिए देवोंने आकर उनका खूब सत्कार किया। जब सम्राट भरतको इस बातका पता चला, तब वे भी समस्त परिवारके साथ हस्तिनापुर आये और वहाँ राजा सोमप्रभ, युवराज श्रेयांसकुमार तथा लक्ष्मीवतिका सन्मान कर प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर युवराज श्रेयांसकुमारने दानका स्वरूप, दानकी आवश्यकता तथा उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रोंका स्वरूप बताया। प्रथम तीर्थंकर भगवान वृषभदेवको आहार देकर युवराज श्रेयांसकुमारने प्रथम दान-तीर्थकी प्रवृत्ति चलाकर लोकोत्तर पुण्यका उपार्जन किया था, उसका वर्णन कौन कर सकता है? आचार्योंने कहा है, कि जो तीर्थंकरोंको सबसे पहले आहार देता है, वह नियमसे उसी भवसे मोक्ष प्राप्त करता है; सो युवराज श्रेयांसकुमार भी लोकमें अत्यन्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर, आयुके अन्त समय मोक्षको प्राप्त हुए।

भगवान ऋषभदेव मुनिन्द्र व मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त प्रथम दान-तीर्थ प्रवर्तक श्रेयांसकुमारको कोटि-कोटि वंदन।

सती चन्दनबाला और उसके सम्बन्धीके पूर्वभवका संक्षिप्त परिचय

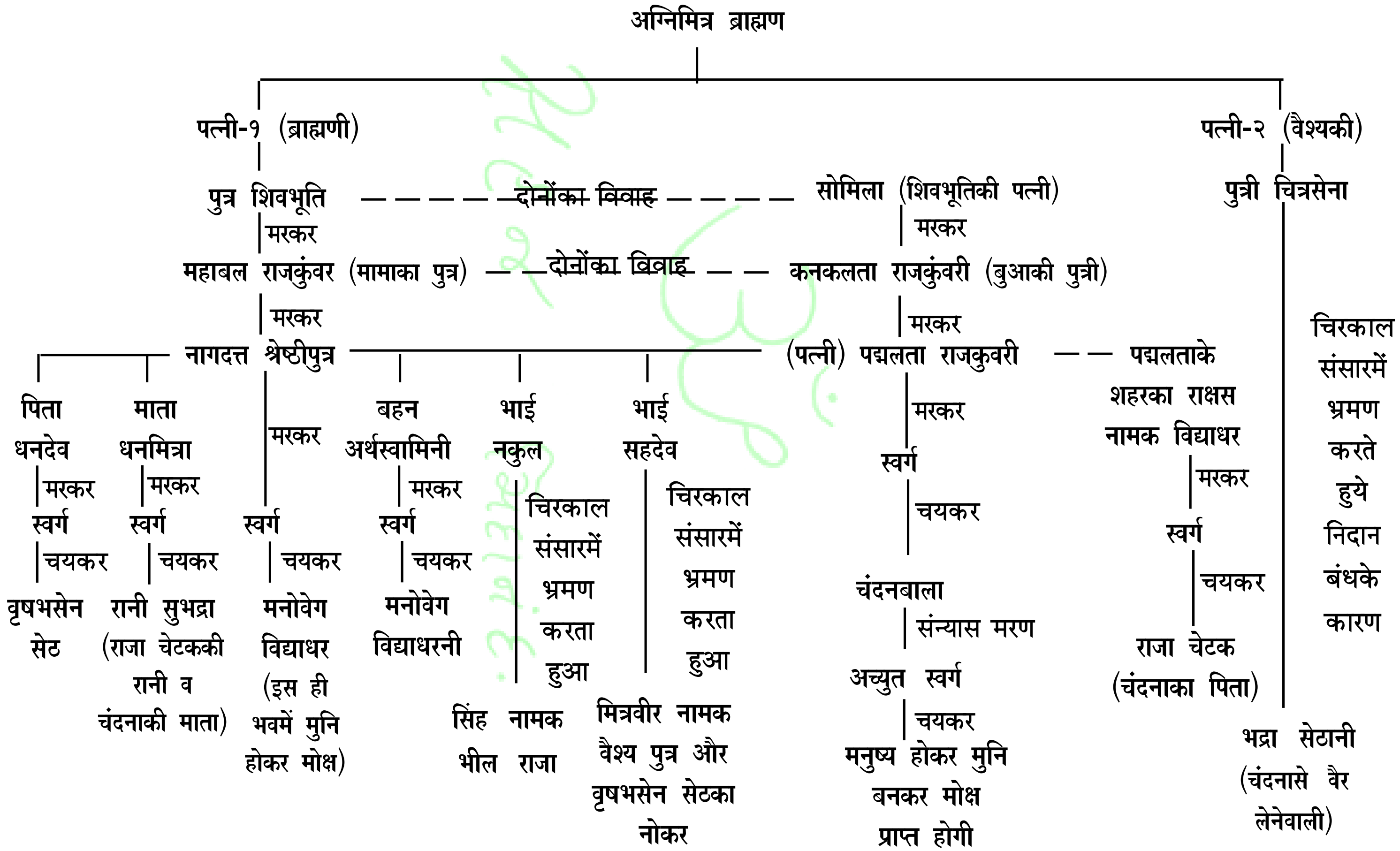

सती चन्दनबालाका वैराग्य

मगध देशमें एक वत्सा नामकी विशाल नगरी है। राजा प्रसेनिक उसमें राज्य करता था। उसी नगरीमें एक राजमान्य अग्निमित्र नामका ब्राह्मण रहता था। उसकी दो स्त्रियाँ थी। एक ब्राह्मणी और दूसरी वैश्यकी। ब्राह्मणीके शिवभूति(विद्याधर मनोवेगका जीव पूर्वभव-5) नामका पुत्र हुआ और वैश्यकी स्त्रीसे चित्रसेना नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। शिवभूतिकी स्त्रीका नाम सोमिला(चन्दनाका जीव–पूर्वभव-5) था। जो सोमशर्मा ब्राह्मणकी पुत्री थी। उसी नगरमें देवशर्मा नामक ब्राह्मणका पुत्र था, उसे चित्रसेना व्याही गयी थी। कितने दिन पश्चात् अग्निभूति ब्राह्मण मर गया। तब उसके स्थान पर उसका पुत्र शिवभूति ब्राह्मण अधिरूढ हुआ।

इधर चित्रसेना विधवा हो गयी। इसलिए अपने पुत्रोंके साथ शिवभूतिके घर आकर रहने लगी। शिवभूति अपनी बहन चित्रसेना और उसके पुत्रोंका भरणपोषण करता था, वह पत्नी-सोमिलासे सह्य नहीं गया। इसलिए शिवभूतिने उसे ताड़ना दी। अतः क्रोधित होकर मिथ्या दोष लगाया, कि यह मेरा भर्तार चित्रसेनाके साथ रहता है अर्थात् इसका उसके साथ अनुराग है। चित्रसेनाने भी क्रोधमें आकर निदान किया, कि इसने (सोमिलाने)मुझे मिथ्या दोष लगाया है। इसलिए मैं मरनेके बाद इसका निग्रह करूँगी—बदला लूँगी।

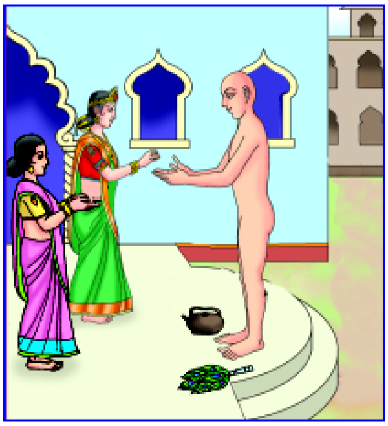

तदन्तर किसी एक दिन सोमिलाने शिवगुप्ति नामक मुनिराजको पड़गाहकर आहार दिया, जिससे शिवभूतिने सोमिलाके प्रति बहुत ही क्रोध प्रकट किया; परन्तु उन मुनिराजका माहात्मय कहकर सोमिलाने शिवभूतिको प्रसन्न कर लिया और उसने भी दानकी अच्छी तरह अनुमोदना की।

समय पाकर वह शिवभूति मरा और अत्यन्त रमणीय बंग देशके कान्तपुर नगरमें वहाँके राजा सुवर्णवर्मा तथा रानी विद्युल्लेखाके महाबल नामका पुत्र (विद्याधर मनोवेगका पूर्वभव-4) हुआ। इसी भरतक्षेत्रके अंग देशकी चम्पा नगरीमें राजा श्रीषेण राज्य करते थे। इनकी रानीका नाम धनी था, वह कान्तपुर नगरके राजा सुवर्णवर्माकी बहन थी। सोमिला उन दोनोंकी कनकलता (चन्दना पूर्वभव-4) नामकी पुत्री हुई। जब यह उत्पन्न हुई थी तभी इसके माता-पिताने बड़े हर्षसे अपने-आप यह निश्चय कर लिया था, कि यह पुत्री महाबलकुमारके लिए देनी चाहिए। महाबलका लालन-पालन भी इसी चम्पानगरीमें मामाके घर बालिका कनकलताके साथ होता था। जब यौवनका समय निकट आ गया, तब मामाने कहा, कि जब तक तुम्हारे विवाहका समय आता है तब तक तुम पृथक् रहो। मामाके कहनेसे महाबल यद्यपि बाहर रहने लगा तो भी कन्यामें आसक्त रहता था। वे दोनों कामकी अवस्थाको सह नहीं सके। इसलिए उन दोनोंका समागम हो गया। इस कार्यसे वे दोनों स्वयं लज्जित हुए और कान्तपुर नगरको चले गये। उन्हें देखकर महाबलके माता-पिताने कहा, कि तुम विरुद्ध आचरण करनेवाले हो इसलिए किसी दूसरे देशमें चले जाओ।

एक दिन वे उद्यानमें विहार कर रहे थे, कि उनकी दृष्टि मुनिगुप्त मुनिराज पर पड़ी। वे मुनिराज आहारके अर्थ विचरण कर रहे थे। तदन्तर उन्होंने अपने उपयोगके लिए तैयार किए हुए लड्डु आदि खाद्य पदार्थ हर्षपूर्वक मुनिराजको दे दिये और अनेक प्रकारका पुण्य संचित किया। किसी एक दिन महाबलकुमार मधुमास–चैत्रमासमें वनमें धूम रहा था, वहाँ एक विषैले साँपने उसे काट खाया जिससे वह शीघ्र ही मर गया। पतिके मृत शरीरको देखकर उसकी स्त्री कनकलता(चन्दना पूर्वभव-4)ने उसीकी तलवारसे आत्मघात कर लिया। आचार्य कहते हैं, कि जो स्नेह चरम सीमाको प्राप्त हो जाता है, उसकी ऐसी ही दशा होती है।

इसी भरतक्षेत्रके अवन्ति देशमें एक उज्जयिनी नामका नगर है। प्रजापति महाराज उसका पालन करते थे। उसी नगरमें धनदेव नामका एक सेठ रहता था। उसकी धनमित्रा नामकी(सुभद्रा रानी-चन्दनाकी माँ पूर्वभव-3) पतिव्रता सेठानी थी। महाबलका जीव उन दोनोंके पूर्वभवमें आहारदानके फलस्वरूप अति पुण्यशाली नागदत्त नामका

(मनोवेग विद्याधर पूर्वभव-3) पुत्र हुआ। उसके अर्थस्वामिनी नामक एक छोटी बहन भी थी। पलाशद्वीपके मध्यमें स्थित पलाशनगरमें राजा महाबल राज्य करता था। कनकलता, इसी महाबल राजाकी कांचनलता नामकी रानीसे पद्मलता(चन्दना पूर्वभव-3) नामकी प्रसिद्ध पुत्री हुई।

एक दिन उज्ञयिनी नगरीके सेठ धनदेवने दूसरी स्त्रीके साथ विवाह कर पहली स्त्री धनमित्राको छोड़ दिया। इसलिए वह अपने पुत्र सहित देशान्तर चली गयी। एक समय सम्यक्ज्ञान उत्पन्न होनेपर उसने शीलदत्त गुरुके पास श्रावकके व्रत ग्रहण किये और पुत्र भी मुनिराजसे शास्त्रोंका अभ्यास हेतु उनके साथ विचरण करने लगा। कुछ समय पाकर वह पुत्र भी उत्तम कवि हुआ और शास्त्रोंकी व्याख्यासे सुयश प्राप्त करने लगा।

वह नाना अंलकारों युक्त मनोहर वचनों तथा प्रसादगुण पूर्ण सुभाषितोंसे विशिष्ट मनुष्योंके हृदयोंमें आह्लाद उत्पन्न कर देता था। वहाँके कोटपालके पुत्र दृढरथके साथ मित्रता करके , नागदत्तने उस नगरके शिष्ट मनुष्योंको शास्त्रोंकी व्याख्या सुनायी। जिससे उपाध्यायपद प्राप्त करके बहुत-सा धन कमाया अपनी माता, बहन और अपने-आपका पोषण किया। नन्दी नामक गाँवमें रहनेवाले कुलवाणिज नामके अपने मामाके पुत्रके साथ उसने बड़े आदरसे अपनी छोटी बहनका विवाह करा दिया। एक दिन उसने बहुत सारे श्लोक सुनाकर राजाके दर्शन किए और राजाकी प्रसन्नतासे भारी धन, सन्मान प्राप्त किया।

एक दिन वह मातासे पूछकर पिताके पास आया और चरण-कमलोंको प्रणाम कर खड़ा हो गया। सेठ धनदेवने 'हे पुत्र चिरंजीव रहो' इत्यादि प्रिय वचन कहकर सन्तुष्ट किया। तदन्तर नागदत्तने अपने भागकी रत्नादि वस्तुएँ माँगी। इसके उत्तरमें पिताने कहा, कि 'हे पुत्र मेरी सब वस्तुएँ पलाशद्वीपके मध्यमें पलाशनगरमें रखी है , तू जाकर ले ले'। पिताके ऐसे कहने पर वह अपने हिस्सेदार नकुल और सहदेव नामक भाईयोंके साथ नावपर बैठकर समुद्रके भीतर चला। वह शीघ्र ही पलाशनगर पहुँचा। वहाँ अपना जहाज खड़ा कर देखा, कि नगर संचाररहित है। यह देख वह आश्चर्य करने लगा, कि यह नगर ऐसा क्यों है ?

तदनन्तर लम्बी रस्सी फेंककर उनके आश्रयसे वह उस नगरके भीतर पहुँचा। नगरमें अकेली बैठी हुई कन्याको देखा उससे पूछा 'तू स्वयं कौन है?' सो कह। उस कन्याने कहा, पहले इस नगरका स्वामीका कोई भागीदार था; जो अत्यन्त क्रोधी था और राक्षसविद्या सिद्ध होनेके कारण 'राक्षस' विद्याधर(राजा चेटकका पूर्वभव-3) इस नामको ही प्राप्त हो गया था। उसने क्रोधवश नगरको तथा राजाको नष्ट कर दिया। तदनन्तर उसके वंशमें होनेवाले किसी पुरुषने मन्त्रपूर्वक तलवार सिद्ध की थी और उसी तलवारके प्रभावसे उसने इस नगरको सुरक्षित कर फिरसे बसाया है। इस समय नगरका राजा महाबल है और रानीका नाम कांचनलता है। मैं इन दोनोंकी पद्मलता नामकी पुत्री(चन्दना-पूर्वभव-3) हूँ। मेरा पिता उस मन्त्रसाधित तलवारको कभी भी अपने हाथसे अलग नहीं करते थे, परन्तु प्रमादसे एकबार उसे अलग रख दिया और छिद्र देखकर राक्षसने पिताको मार डाला, जिससे यह नगर फिरसे सूना हो गया है। उसने मुझे अपनी पुत्रीके समान माना। अतः वह मुझे बिना मारे ही चला गया। अब वह मुझे फिर लेनेके लिए आवेगा।

कन्याकी बात सुनकर वह नागदत्त उस तलवारको लेकर नगरके गोपुरमें (मुख्य द्वार) जा छिपा और जब वह विद्याधर आया तो उसे मार दिया। वह विद्याधर भी उसी समय पंच नमस्कार मन्त्रका पाठ करता हुआ, चित्त स्थिर कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पंच नमस्कार पदको सुनकर नागदत्त विचार करने लगा, कि हाय! मैंने यह सब पाप व्यर्थ ही किया है। उसने झट अपनी तलवार फेंक दी और उस घाव लगे विद्याधरसे पूछा, कि 'तेरा धर्म क्या है?' इसके उत्तरमें विद्याधरने कहा, कि 'मैं भी श्रावकका पुत्र हूँ, मैंने यह नगरका नाश क्रोधसे किया है'।

देखो क्रोधसे मित्र शत्रु हो जाता है, क्रोधसे धर्म नष्ट हो जाता है, क्रोधसे राज्य भ्रष्ट हो जाता है और क्रोधसे प्राण तक छूट जाते हैं और अधोगति होती है, इसलिए कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको सदाके लिए क्रोध छोड़ देना चाहिए, ऐसा जिनेन्द्र भगवानने कहा है। मैं जानता हुआ भी क्रोधके वशीभूत हो गया था। उसका फल मैंने अभी प्राप्त कर लिया, अब परलोककी बात क्या कहना है?'

इस प्रकार अपनी निंदा करता हुआ, वह विद्याधर नागदत्तसे बोला, कि 'आप

कहाँसे आये हैं ?' इसके उत्तरमें नागदत्तने कहा, कि 'मैं एक पाहुना(अतिथि) हूँ और इस कन्याको शोकसे विह्वल देखकर तेरे भयसे इसकी रक्षा करनेके लिए यह पराक्रम कर बैठा हूँ। तू 'धर्म भक्त है' यह जाने बिना ही मैं यह कार्य कर बैठा हूँ और मैंने जिनेन्द्रदेवके शासनमें कहे हुए सारभूत धर्मवात्सल्यको छोड़ दिया है। हे भव्य! जैन शासनकी मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले मेरे अपराधको, तू क्षमा कर।' नागदत्तकी कही हुई यह सब बात समझकर वह विद्याधर कहने लगा, कि 'इसमें आपने क्या किया है, यह मेरे ही पूर्वोपार्जित कर्मका विशिष्ट उदय है।' इस प्रकार नागदत्तके कहे हुए पंचनमस्कार मन्त्रकी भावना करता हुआ विद्याधर स्वर्ग(चेटकका पूर्वभव-2)को प्राप्त हुआ।

तदनन्तर नागदत्तके पिताने कमाये हुए धनको तथा कन्या पद्मलताको खींचनेकी रस्सीसे जहाज पर पहुँचाया तथा सहदेव तथा नकुल भाईको भी जहाज पर पहुँचाया। जहाज पर पहुँचते ही नकुल और सहदेवने खींचनेकी रस्सी नागदत्तको नहीं दी। दोनों भाई अकेले नगर पहुँचे। उन दोनों भाईयोंको देखकर वहाँके राजा तथा अन्य लोगोंको कुछ शंका हुई और इसलिए उन सबने पूछा, कि तुम दोनोंके साथ नागदत्त भी तो गया था, वह क्यों नहीं आया ? इसके उत्तरमें उन्होंने कहा, कि यद्यपि नागदत्त हम लोगोंके साथ ही गया था, परन्तु वह वहाँ जाकर कहीं अन्यत्र चला गया। इसलिए हम उसका हाल नहीं जानते हैं। इस प्रकार दोनोंने भाई होकर भी नागदत्तके छोड़नेकी बात छिपा ली। पुत्रके न आनेकी बात सुनकर नागदत्तकी माता बहुत व्याकुल हुई और उसने श्री शीलदत्त गुरुके पास जाकर पुत्रकी कथा पूछी। उन्होंने सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रसे देखकर उसे आश्वासन दिया, कि तू डर मत, तेरा पुत्र किसी विघ्नके बिना शीघ्र ही आवेगा।

इधर नागदत्तने एक जिनमंदिर देखकर उसकी कुछ प्रदक्षिणा दी, स्तुति पढ़ी और चिन्तातुर होकर बैठ गया। दैवयोगसे एक जैनी विद्याधर वहाँ आया और नागदत्तसे सब समाचार सुनकर उसे धनसहित इस द्वीपके मध्यसे बाहर निकालकर मनोहर नामके वनमें उतारकर, अपने इच्छित स्थान पर चला गया। सो ठीक ही है, क्योंकि सत्पुरुषोंकी धर्म-वत्सलता ऐसी ही होती है।

उस मनोहर वनके समीप नन्दीग्राममें नागदत्तकी छोटी बहन अर्थस्वामिनी (विद्याधरनी मनोवेगा पूर्वभव-3) रहती थी। इसलिए नागदत्त वहाँ पहुँचा और अपना सब धन उसके पास रखकर अच्छी तरह रहने लगा। कुछ समय बाद बहनके ससुर आदि स्नेहसे नागदत्तके पास आकर कहने लगे, कि 'कुमार! नयी आई हुई कन्या(पद्मलता)को सेठ अपने नकुल पुत्रके लिए ग्रहण करना चाहता है, परंतु निर्धन होनेसे हम सब खाली हाथ कैसे जावेंगे? उनकी बात सुनकर नागदत्तने अपने रत्नसमूहमेंसे अच्छे रत्न निकालकर प्रसन्नतासे उन्हें दिये और साथ ही यह कहकर एक रत्नमयी अंगूठी भी दी, कि तुम मेरे आनेकी खबर देकर उस कन्याके लिए यह अंगूठी देना। इतना ही नहीं, नागदत्त स्वयं भी उनके साथ गया। वहाँ जाकर पहले शीलदत्त मुनिराजकी वन्दना की। तदनन्तर अपने मित्र कोटवाल पुत्र दृढरथको सारी कथा सुनाकर राजाको रत्नोंकी भेंट देकर प्रसन्नतासे राजाके दर्शन किये।

महाराजने पूछा, कि अरे नागदत्त! तुम कहाँसे आ रहे हो और कहाँ चले गये थे? राजाकी बात सुनकर नागदत्त बड़ा संतुष्ट हुआ। उसने अपने हिस्सा माँगने और उसके लिए यात्रा करने आदिके सब समाचार, आदिसे लेकर अन्त तक कह सुनाये। उन्हें सुनकर राजा बहुत ही कुपित हुआ और सेठका निग्रह करनेके लिए तैयार हो गया परन्तु ऐसा करना उचित नहीं है, यह कहकर आग्रहपूर्वक नागदत्तने मना कर दिया। राजाने बहुत-सा अच्छा धन देकर 'पद्मलता' कन्या नागदत्तको सौंप दी।

तदन्तर राजाने अपनी सभामें स्पष्टरूपसे कहा, कि 'देखो पुण्यका कैसा माहात्म्य है'? यह नागदत्त राक्षस आदि अनेक विघ्नोंसे बचकर और श्रेष्ठ रत्नोंसे अपनेको आधीनकर सुखपूर्वक यहाँ आ गया है। देखो पुण्यसे अग्नि जल हो जाती है, पुण्यसे विष अमृत हो जाता है, पुण्यसे शत्रु मित्र हो जाता है, पुण्यसे सब प्रकारके भय शान्त हो जाते हैं, पुण्यसे निर्धन मनुष्य भी धनवान हो जाते हैं और पुण्यसे स्वर्ग भी प्राप्त होता है। इसलिए आपत्तिरहित सम्पदाकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको श्री जिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मशास्त्रके अनुसार सम्यक्त्व व श्रावकधर्मकी सब क्रियाएँ कर (व्यवहारनयसे) पुण्यका बन्ध करना चाहिए। राजाका यह उपदेश सभाके सब लोगोंने अपने हृदयमें धारण किया।

तदनन्तर सेठको भी बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह उसी समय 'हे कुमार! क्षमा करो' कहकर अपने अन्य पुत्रों तथा स्त्री सहित प्रणाम करने लगा, परन्तु नागदत्तने उसे ऐसा करने नहीं दिया और उठाकर प्रिय वचनोंसे उसे संतुष्ट कर दिया। तदनन्तर उस बुद्धिमानने जिनेन्द्र भगवानूकी पूजा की। इस प्रकार सबने श्रावकका उत्तम धर्म स्वीकृत किया, सबके हृदयमें परस्पर मित्रता हो गयी और दान-पूजादि उत्तम कार्योंसे सबका समय व्यतीत होने लगा। आयुके अन्तमें नागदत्तने संन्यासपूर्वक प्राण छोड़े जिससे सौधर्म स्वर्गमें(विद्याधर मनोवेग पूर्वभव-2) बड़ा देव हुआ। स्वर्गके श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग कर वहाँसे च्युत हुआ और इसी भरतक्षेत्रमें विद्याधर राजा पवनवेगकी रानी सुवेगासे यह अत्यन्त सुखी (चन्दनाका हरण करनेवाला) मनोवेग नामक पुत्र हुआ। विद्याधर जो निकटभव्य होनेसे इसी भवमें निर्ग्रंथदशा धारणकर मोक्ष जायेगा।

नागदत्तकी छोटी बहन अर्थस्वामिनी स्वर्गलोकसे आकर यहाँ महाकान्तिको धारण करनेवाली मनोवेगा हुई। जो विद्याधर पलाशनगरमें नागदत्तके हाथसे मारा गया था, वह स्वर्गसे आकर सोमवंशमें राजा चेटक हुआ। धनमित्रा नामकी जो नागदत्ताकी माता थी, वह स्वर्गसे च्युत होकर मनको प्रिय लगनेवाली वह राजा चेटककी सुभद्रा रानी हुई। नागदत्तकी स्त्री पद्मलता थी, वह अनेक उपवास कर स्वर्ग(चंदना पूर्वभव-2) गयी थी और वहाँसे आकर वह चन्दना नामकी राजा चेटककी पुत्री हुई।

नकुल संसारमें भ्रमण कर 'सिंह' नामका भील राजा हुआ व उसने पूर्वजन्मके स्नेह और वैरके कारण ही चन्दनाको तंग किया था। सहदेव भी चिरकाल तक भ्रमण कर कौशाम्बी नगरीमें मित्रवीर नामक बुद्धिमान वैश्यपुत्र हुआ जो कि वृषभसेनका सेवक होनेसे चन्दना वृषभसेन सेठके लिये समर्पित की थी। नागदत्तका पिता धनदेव शान्तचित्तसे मरकर स्वर्ग गया था और वहाँसे आकर कौशाम्बी नगरीमें अनेक गुणोंसे युक्त श्रीमान् वृषभसेन नामक सेठ हुआ। चित्रसेनाने सोमिलासे द्वेष किया था, इसलिये वह चिरकाल तक संसारमें भ्रमण करती रही। तदनन्तर कुछ शांत हुई तो कौशाम्बी नगरीमें वैश्यपुत्री हुई और भद्रा नामसे प्रसिद्ध होकर वृषभसेनकी पत्नी हुई। निदानके समय जो उसने वैर किया था उसीमें उसने चंदनासे बदला किया—अर्थात् चन्दनाको कष्ट दिया।

आचार्य गौतम गणधर कहते हैं, कि इस प्रकार बन्धके साधनोंमें जो मिथ्यादर्शन आदि पांच प्रकारके भाव कहे गये हैं उनके निमित्तसे संचित हुए कर्मोंके द्वारा यह जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, आदि पंच परावर्तनोंको प्राप्त होता हैं। ये पंच प्रकारके परिवर्तन ही संसारमें सबसें भयंकर दुःख हैं। खेदकी बात है कि यह प्राणी निरन्तर इन्हीं पांच प्रकारके दुःखोंको पाते हुए यमराजके मुंहमें जा पड़ते हैं, फिर यही जीव काललब्धि आदि कारण पाकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र व तपरूप मोक्षके उत्कृष्ट साधन पाकर पुण्यकर्म करते हुए सात परमस्थानोंमें परम ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं और यथाक्रमसे अनन्त सुखके भाजन होते हैं।

सिन्धुदेशकी वैशाली नगरीमें चेटक नामका अतिशय प्रसिद्ध, विनीत और जिनेन्द्रदेवका अतिशय भक्त राजा था। उसकी रानीका नाम सुभद्रा था। उन दोनोंके दश पुत्र हुए जो कि धनदत्त, धनभद्र, उपेन्द्र, सुदत्त, सिंहभद्र, सुकुम्भोज, अकम्पन, पतंगक, प्रभंजन और प्रभास नामसे प्रसिद्ध थे। इन पुत्रोंके सिवाय सात ऋद्धियों समान सात पुत्रियाँ भी थी। जिनमें सबसे बड़ी प्रियकारिणी थी, उसके पश्चात् मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती, चेलना, ज्येष्ठा और सबसे छोटी चन्दना थी। उत्तम व्रत धारण करनेवाली चन्दनाने स्वयं यशस्वती आर्यिकाके समीप जाकर सम्यग्दर्शन और श्रावकोंके व्रत ग्रहण कर लिए।

चंदना द्वारा यशस्वती आर्यिकासे सम्यग्दर्शन व श्रावकके व्रत अंगीकार करना

एक दिन वह चन्दना अपने परिवारके लोगोंके साथ अशोक नामक वनमें क्रीड़ा कर रही थी। उसी समय दैवयोगसे विजयार्ध पर्वतकी दक्षिणश्रेणीके सुवर्णाम नगरका राजा मनोवेग(पूर्वभवका नागदत्त व शिवभूति) विद्याधर अपनी मनोवेगा रानीके साथ विहार करता हुआ, जहाँ चन्दना क्रीड़ा कर रही थी वहाँसे निकला। क्रीड़ा करती हुई चन्दनाको देखकर पूर्व स्नेहके कारण कामसे वशीभूत हो गया। पूर्व जन्मके बढ़ते हुए स्नेहसे विवश होकर ही उसने चन्दनाका हरण करनेका विचार किया, सो योग्य ही है, क्योंकि भारी स्नेह कुमार्गमें ले ही जाता है। विद्याधर स्वयं निकटभव्य है और यह इसी जन्ममें दिगम्बर मुद्रा धारण कर मोक्षपद प्राप्त करेगा, फिर भी उसने चन्दनाके हरणका विचार किया।

वह शीघ्र ही अपनी स्त्रीको घर भेजकर, रूपिणी विद्यासे अपना दूसरा रूप बनाकर सिंहासन पर बैठा व अशोकवनमें आकर, चन्दनाको लेने शीघ्र वापस चला गया।

विद्याधर मनोवेग द्वारा चंदनाका हरण

विद्याधर मनोवेग द्वारा अपनी पत्निसे डरकर चंदनाको गहन अटवीमें छोड़ देना

उधर मनोवेगा(पूर्वभवमें इसी विद्याधरकी बहन) उसकी मायाको जान गयी। उसने विद्या देवीको बाँये पैरकी ठोकर देकर मार गिराया, जिससे वह अट्टहास करती हुई सिंहासनसे उसी समय चली गई। तदन्तर मनोवेगा रानीने अवलोकीनी नामकी विद्यासे, अपने पतिकी सब चेष्टा जानकर उसके पीछे दौड़ी और आधे मार्गमें चन्दना सहित अपने पतिको लौटते हुए देखकर बोली, कि यदि अपना जीवन चाहते हो तो उसे छोड़ दो। इस प्रकार उसने उसे बहुत ही डाँटा। मनोवेग अपनी स्त्रीसे बहुत ही डर गया। इसलिए सिद्ध की हुई पर्णलध्वी नामकी विद्यासे, उस चन्दनाको भूतरमण नामक वनमें, ऐरावती नदीके किनारे पर छोड़ दिया।

पंच नमस्कार मंत्रका जाप करनेमें तत्पर रहनेवाली चन्दनाने रात्रि बड़े कष्टसे बितायी। प्रातकाल जब सूर्यका उदय हुआ तब भाग्यवश कालक नामक एक भील वहाँ आ पहुँचा। चन्दनाने उसे अपने बहुमूल्य आभूषण दिये और धर्मका उपदेश भी दिया। जिससे वह बहुत ही संतुष्ट हुआ। भीमकूट नामक पर्वतके पास रहनेवाला एक सिंह नामका भीलोंका राजा था। जो भयंकर नामक पल्लीका स्वामी था। उस कालक नामक भीलने वह चन्दना उसी सिंह राजाको सौंप दी। सिंह पापी था। अतः चन्दनाको देखकर उसका हृदय कामाग्निसे मोहित हो गया। वह उसे अपने अधीन करनेके लिए उद्यत हुआ। यह देख उसकी माताने समझाया, कि हे पुत्र! तू ऐसा मत कर, यह प्रत्यक्ष देवता है। यदि कुपित हो गई तो कितने ही संताप और दुःख देनेवाली होगी। इस प्रकार माताके कहनेसे डरकर, स्वयं दुष्ट होने पर भी, उसने चन्दनाको छोड़ दी। तदनन्तर चन्दनाने उस भीलकी माताके साथ निश्चिंत होकर कुछ काल वहीं पर व्यतीत किया। वहाँ भीलकी माता उसका अच्छी तरह भरण-पोषण करती थी।

वत्स देशके कौशाम्बी नामक श्रेष्ठ नगरमें एक वृषभसेन नामका सेठ रहता था।

जंगलके भील राजा द्वारा चंदनाको वृषभसेन सेठको बेचना

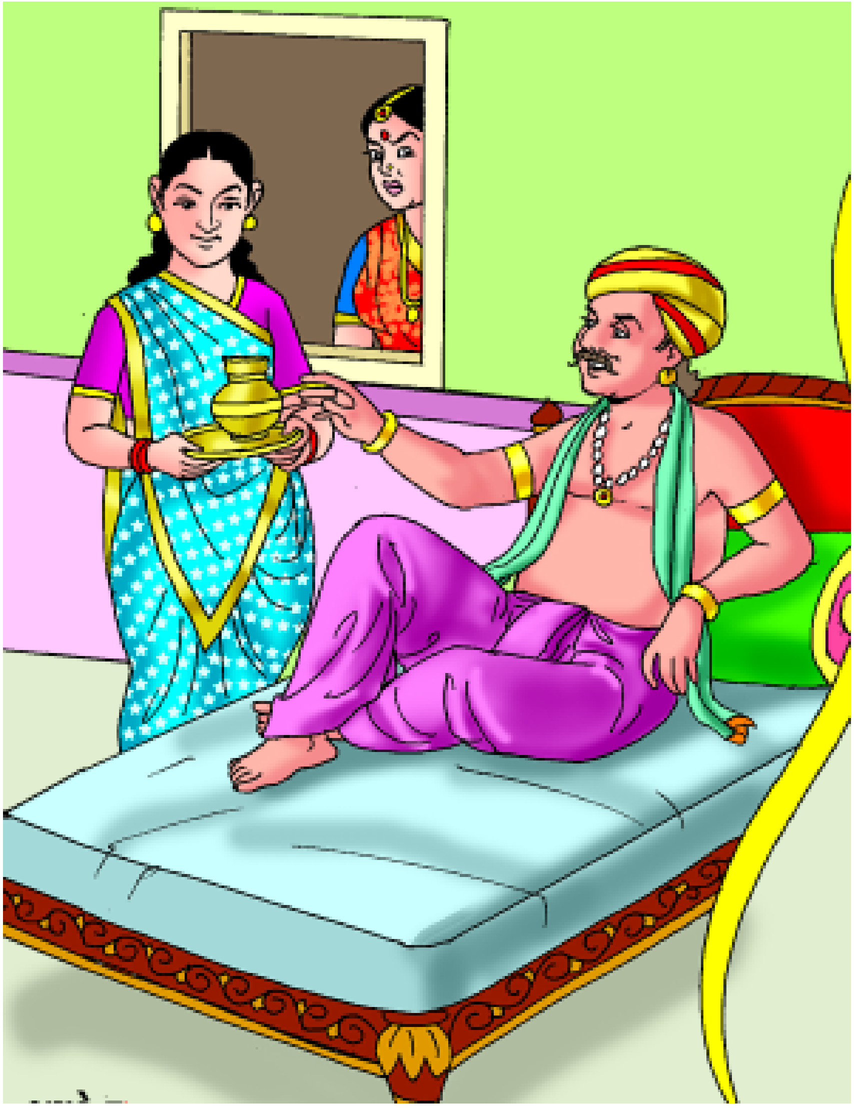

वृषभसेन सेठको जल पीलाती हुई चंदना

उसके मित्रवीर नामका एक कर्मचारी था। वह उस भील राजाका मित्र था। भीलोंके राजाने वह चन्दना उस मित्रवीरके लिए दे दी और मित्रवीरने भी बहुत भारी धनके साथ हृदयपूर्वक वह चन्दना अपने सेठके लिए सौंप दी। एक दिन वह चन्दना उस सेठके लिए जल पिला रही थी, उस समय केशोंका कलाप छूट गये और जलसे भीगे हुए केशोंका समूह पृथ्वी पर लटक रहा था। उसे बड़े यत्नके साथ एक हाथसे सँभाल रही थी। सेठकी स्त्री भद्रा सेठानीने चन्दनाका यह रूप देखा तो वह शंकासे भर गयी।

शंकित भद्रा सेठानी द्वारा चंदनाका मुंडन करवाकर बेड़ीओंसे बाँधकर रखना

उसने मनमें समझा, कि पतिका इसके साथ सम्पर्क है। ऐसा मानकर वह बहुत ही कुपित हुई।

क्रोधके कारण उसके ओठ काँपने लगे। उसे शंका हो गयी, कि कहीं सेठका इसके साथ सम्बन्ध न हो जाये। इस शंकासे वह चन्दनाको खानेके लिए मिट्टीके शकोरेमें काँजीसे मिला हुआ कोदोंका भात दिया करती थी; उसके सिर पर मुंडन

करवाया और क्रोधवश उस दुष्टाने चन्दनाको हरसमय साँकलसे बांधे रखा तथा खराब भोजन और ताड़न-मारन व निंदाके द्वारा निरंतर कष्ट पहुँचाने लगी। परन्तु चन्दना यही विचार करती थी, कि यह सब मेरे-द्वारा किये हुए पापकर्मोंका फल है। यह बेचारी सेठानी क्या कर सकती है ? ऐसा विचारकर वह निरन्तर आत्मनिंदा करती रहती थी। उसने यह सब समाचार अपनी बड़ी बहन मृगावती—जो, कि उस ही नगरकी महारानी थी, उसको भी नहीं कहलवाया था।

तदनन्तर एक दिन वत्सदेशकी उस कोशम्बा नगरीमें, महावीर स्वामीने आहारके लिए प्रवेश किया। उन्हें नगरमें प्रवेश करते देखकर, चन्दना बड़ी भक्तिसे आगे बढ़ी। आगे बढ़ते ही उसकी साँकलके बंधन टूट गये और आभरणोंसे उसका सारा शरीर सुंदर दिखने लगा। चंचल भ्रमर-समूहके समान काले उसके बड़े-बड़े केश चंचल हो उठे और उनसे मोतीयोंकी माला टूटकर नीचे गिरने लगी, उसके वस्त्र आभूषण सुन्दर

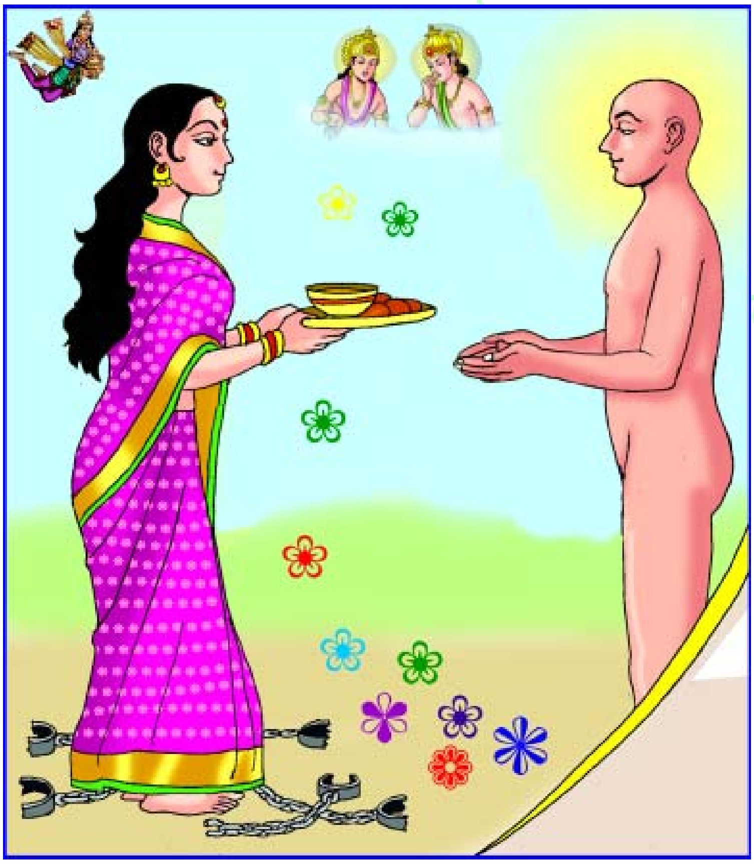

भगवान महावीरको आहारदान देनेकी भावनासे चंदनाका बंधनका खुलना व रूपवती बन जाना

देवों द्वारा पंचाश्चर्य

हो गये, वह नव प्रकारके पुण्यकी स्वामिनी बन गयी, भक्तिभावके भारसे अन्तरमें झुक गयी, शीलके माहात्म्यसे उसका मिट्टीका शकोरा सुवर्णपात्र बन गया और कोदोंका भात शाली चावलोंका भात हो गये। उस बुद्धिमती चंदनाने झुककर शिरसे पृथ्वीतलका स्पर्श किया; मुनिराज महावीरको नमस्कार किया और विधिपूर्वक पडगाहकर उन्हें भोजन कराया। इस आहारदानके प्रभावसे वह प्रभावशालिनी चन्दना बहुत ही संतुष्ट हुई, देवोंने उसका सन्मान किया, रत्नधाराकी वृष्टि होने लगी, सुगन्धित फूल बरसाये, देव-दुन्दुभियोंके शब्द हुए और दान स्तुतिकी घोषणा होने लगी। ठीक ही है, क्योंकि उत्कृष्ट पुण्यके भारी फल तत्काल ही फलते हैं। इस प्रकार वहाँ पंचाश्चर्य हुए।

तदनन्तर चन्दनाकी बड़ी बहन मृगावती यह समाचार जानकर, उसी समय अपने पुत्र उदयनके साथ उसके समीप आयी और स्नेहसे उसका आलिंगन कर पिछला समाचार पूछने लगी। सब पिछला समाचार सुनकर, बहुत ही व्याकुल हुई। तदनन्तर रानी मृगावती उसे अपने घर ले गई। यह देख भद्रा सेठानी और वृषभसेन सेठ दोनों घबड़ाये और मृगावतीके चरणोंकी शरणमें आये। दयालु रानीने उन दोनोंसे चन्दनाके चरण-कमलोंमें प्रणाम करवाया। चन्दनाके क्षमा कर देने पर वे दोनों बहुत ही प्रसन्न हुए और कहने लगे, कि यह मानों क्षमाकी मूर्तिमती है। यह समाचार सुननेसे उत्पन्न हुए स्नेहके कारण चन्दनाके भाई-बन्धु उसके पास आ गये।

भगवान महावीरके समवसरणमें चंदनाका जाना

उसी नगरमें सब लोग महावीरस्वामीकी बन्दनाके लिए गये थे, चन्दना भी गयी थी, वहाँ वैराग्य उत्पन्न

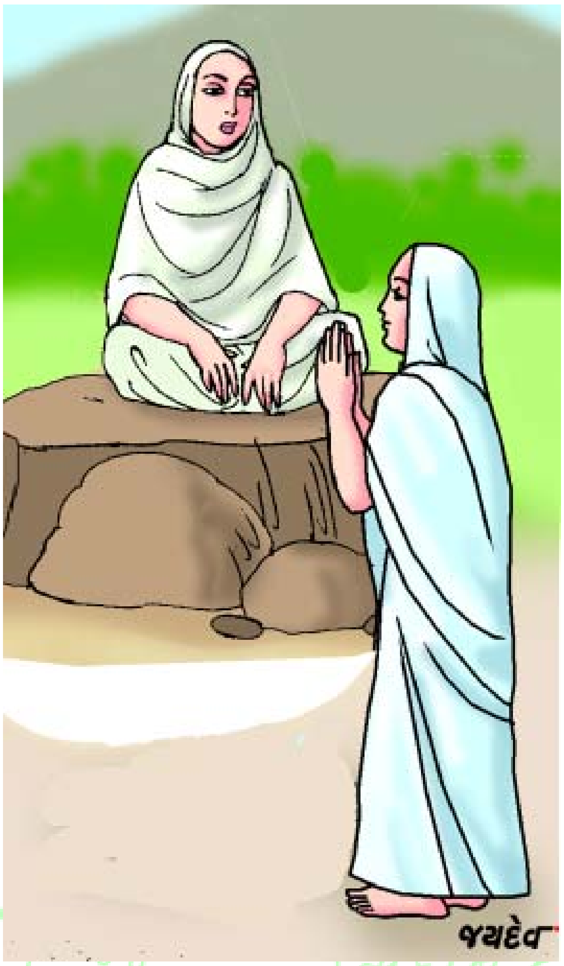

चंदनाका
आर्यिकाव्रत
अंगीकार
करना

होनेसे उसने अपने भाई-बन्धुओंको छोड़कर आर्यिका-दीक्षा धारण कर ली। सम्यग्ज्ञान तथा तपश्चरणके माहात्म्यसे उसी समय गणिनीका पद प्राप्त कर लिया। उसी समय उसने महावीर स्वामीकी सभाके मुख्य आर्यिकाका पद अंगीकार करके स्त्रीलिंगका छेद किया।

यह चन्दना अच्युत स्वर्ग गई और वहाँसे वापिस आकर शुभकर्मके उदयसे पुरुषवेदको पाकर अवश्य ही परमात्मपद–मोक्षपद प्राप्त करेगी।

भावी परमात्मा व माता सति चंदनाको कोटि कोटि वंदन।

शान्तिनाथ मंदिरमें लंकेश द्वारा भक्ति

राम-लक्ष्मणका रावणके साथ युद्ध चल रहा था, उस समय लक्ष्मणजी रावणकी 'शक्ति' विद्यासे मूर्च्छित हो गये थे। विशल्याके द्वारा लक्ष्मणका 'शक्ति'के मार रहित होना एवम् उसके साथ पाणिग्रहण होनेके समाचार जब रावणने सुने, तब उसने इसको कोई महत्त्व नहीं दिया और अपने मुखाकृतिसे प्रकट किया, कि–इस कार्यसे हमारी कोई क्षति नहीं। मारिचादि चतुर मंत्रियोंने अत्यन्त विनयपूर्वक रावणसे प्रार्थना की, कि 'हे देव! आप चाहे कोप करो अथवा प्रसन्न हो, परन्तु हम आपके हितकी ही वार्ता कहेंगे'।

'आपका शत्रु अत्यन्त पराक्रमी, प्रबल और अजेय है। उन्हें गरुड़ तथा सिंहवाहिनी विद्या सिद्ध हुई है, जिसका प्रभाव आपने प्रत्यक्ष देख ही लिया है। इन्द्रजीत और कुम्भकर्णको युद्धमें बाँध लिया है। उनके जीवित रहनेकी कोई आशा नहीं। आपके द्वारा लक्ष्मण पर चलाई 'अमोघविजया शक्ति' भी विफल हुई। आपने हमारी सलाहकी अवहेलना की, परन्तु आप हमारी विनती स्वीकार कीजिए, कि परनारीसे अनुराग दूर कर उसे रामके पास पहुंचाओ। चित्तमें विवेक लाओ, जिससे आपका तथा समस्त प्रजाका कल्याण हो। आप शीघ्र ही पुरुषोत्तम राघवसे संधि करो। आप लोक-मर्यादा पुरुष हो। अतः इसमें आपकी मान-मर्यादाकी भी हानि नहीं है'।

इस प्रकार मन्त्रियोंने रावणसे अत्यन्त मिष्ट तथा हितकारी वचन कहकर, एक बुद्धिमान दूतको श्रीरामके समीप भेजनेका निश्चय किया। रावणने अपने अशुभ कर्मके उदयसे विग्रहरूप वार्ता कहनेके लिए दूतको नेत्रके संकेत द्वारा सावधान कर दिया।

रावणके दूत द्वारा रावणकी महिमापूर्वक श्रीरामको रावणसे सुलह करनेका प्रस्ताव

दूत अत्यन्त चतुर था। वह स्वामीका अभिप्राय समझ गया और कुछ सेना लेकर श्रीरामके कटकमें जा पहुँचा। भामण्डल दूतको लेकर श्रीरामके पास पहुँचे। दूतने कहा, कि 'विद्याधर महेश्वर रावणने कहा है, कि युद्ध करनेसे तुम्हारा कोई भला नहीं है। तुम्हारे पक्षके विद्याधरोंका व्यर्थ ही क्षय होगा। मैंने इन्द्र जैसे पराक्रमीको भी जीतकर बन्दीगृहमें डाला था। अनेक विद्याधर तथा भूमिगोचरी नृपतियोंको वशमें किया है। समुद्र लाँघकर यहाँ तक आए तो हो, परन्तु जीवित वापिस नहीं जा सकोगे। तुम राजनीतिसे सर्वथा अनभिज्ञ हो। अतएव तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ। अब तुम सीताकी हठ छोड़ उसे मुझे दे दो। मैं तुम दोनों भाईयोंको आधी लंकाका राज्य और वैभव देनेको तैयार हूँ। आनन्दपूर्वक अभूतपूर्व सुख भोगो। यदि तुम ये बातें स्वीकार नहीं करोगे, तो हम इन्द्रजीत और कुम्भकर्णको तो बलपूर्वक छुड़ा ही लेंगे, सीता हमारे आधीन है ही; तुम दोनों भी तुम्हारे हिमायतियों सहित जीवित लौट कर नहीं जा सकोगे।

दूतके उत्तेजक वचन सुन, शान्तचित्त श्रीरामने कहा, कि 'मुझे तुम्हारे राज्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। मेरी सीताको मुझे सौंप दो। मैं तुम्हारे पुत्र और भाईको सकुशल भेज दूंगा। लंकाका राज्यसुख तुम्हीं भोगो। हम सीता सहित हिंसक तथा भयानक जीवोंसे भरे गहन वनमें रहकर जीवन व्यतीत करेंगे। तब दूतने कहा, कि हे राम! तुम राजनीति बिलकुल नहीं जानते। रावणका पराक्रम तुम्हें ज्ञात नहीं है। उसने बड़े-बड़े शूरवीरोंका नाश कर दिया है। तुम जाकर अस्थियोंसे भरे कैलाश पर्वतकी शिखरको देख लो।

दूतके अत्यन्त गर्वयुक्त वचन सुनकर भामंडलने क्रोधपूर्वक कहा, कि 'अरे क्षुद्र! तू रावणका क्या पराक्रम गाता है? श्रीराम शीघ्र ही सीताको छुड़ाकर कुलांगार, नीच रावणका वध करेंगे।' यह कहकर खड्ग पकड़कर कहा, कि हे सुभट! स्त्री, बालक, दूत, वृद्ध, रोगी, योगी, शरणागत और गाय ये सर्वथा अवद्य हैं। पराधीन दूत 'जैसा स्वामी कहता है, वैसा ही वह कहता है'—ऐसा कहकर रामने भामण्डलके क्रोधको शान्त किया और दूतको तिरस्कारपूर्वक निकाल दिया।

वह अपमानित हो संक्लेशित होता हुआ रावणके समीप आया। उसने स्वामीसे

श्री शांतिनाथ भगवानके मंदिरमें एक ओर रावणका बहुरूपिणी विद्याकी साधना और
दूसरी ओर कपिकुमारो द्वारा इस साधनामें अवरोध खड़े करना

हाथ जोड़ विनयपूर्वक कहा, कि हे नाथ! मैंने आपके आदेशानुसार वचन रामसे कहे, परन्तु वे सीताका हठ नहीं छोड़ते। उन्होंने कहा, कि 'तुम जैसे लोक-मर्यादा पुरुषको ऐसे लोकनिन्द्य वचन न कहना चाहिए। तुम अपनी लंकाका राज्य भोगो। मैं वनमें सीता सहित जीवन व्यतीत करूँगा।' हे नाथ! महाभिमानी सुग्रीवने हंसकर कहा, कि 'तेरा स्वामी कोई क्रूर, ग्रह, पिशाच अथवा वायु-विकार वश हुआ है, जिससे ऐसा बक रहा है। जान पड़ता है, कि लंकामें कोई मंत्रवादी या चतुर वैद्य नहीं है, जो रावणको मंत्र अथवा तैलादि मर्दन कर चंगा करे।' यह निश्चय है, कि संग्राममें लक्ष्मण तेरे स्वामीका सर्व रोग दूर कर देगा'।

दूत द्वारा रामके वचन सुन रावण नीचा मुख कर दोनों कपोलों पर हाथ रख विचारने लगा, कि यदि शत्रुको युद्धमें जीतूं तो भ्राता और पुत्रकी कुशल नहीं दिखती तथा शत्रुके कटकमें प्रवेश कर रति, हाव-भाव कटाक्षादिसे पुत्र और भाईको ले आऊँ, तो मेरी शूरतामें बट्टा लगता है, फिर रति, हाव-भाव करना क्षत्रियोंको योग्य नहीं है। निदान रावणने बहुरूपिणी-विद्या साधनेका विचार किया।

दूसरे दिनसे अष्टाह्निका-पर्व लगनेका समय था। रावणने अपने सेवकोंको आज्ञा दी, कि शीघ्र ही शान्तिनाथ भगवानके चैत्यालयको ध्वजा तोरणादिसे सजाओ। नगरके समस्त चैत्यालयोंको सुसज्जित करके नगर-निवासी उसमें पूजा-प्रभावना करें। फिर मन्दोदरीको बुलाकर कहा, कि 'हे प्रिये! समस्त मन्त्री तथा कोटपालोंको बुलाकर नगरमें घोषणा कराओ, कि जब तक अष्टाह्निका पर्व है, तब तक समस्त प्रजा दयाभाव, दान, पूजा और धर्म-चर्चामें संलग्न रहे। संयमपूर्वक रहकर जिनेन्द्र भगवानकी पूजा करें। आजसे युद्ध आठ दिनके लिए स्थगित कर दिया जाय तथा सब सूर सामन्त संयमपूर्वक भगवानकी पूजा-प्रभावना, वन्दनादिसे धार्मिक शुभ-क्रियाओंमें प्रवृत्त हों।' ऐसा कहकर रावण शुद्ध वस्त्र धारण कर, मस्तक पर रत्न-जड़ित सुंदर मुकुट बांध भगवान शान्तिनाथके मन्दिरमें प्रवेश कर, विशेष पूजा और अभीष्ट महा साधनामें एकचित होकर संलग्न हुआ।

रानी मन्दोदरीने पतिकी आज्ञानुसार समस्त मंत्रियों तथा यमदण्ड नामक कोटपालको बुलाकर समस्त नगरमें शान्तिमय और संयमपूर्वक रहनेकी घोषणा कराई

तथा कहा, कि जब तक स्वामीकी साधना सिद्ध नहीं हो, तब तक समस्त प्रजा-जन धर्माचरण कर श्रीजिनेन्द्र भगवानकी पूजा-प्रभावनामें संलग्न रहे। किसी प्रकारका कोई उपद्रव भी हो तो भी शान्तिपूर्वक सहन करें।

रावण द्वारा बहुरूपिणी विद्या साधने तथा समस्त प्रजाजनोंको संयमरूप शान्त रहनेका समाचार जब श्रीरामके कटकमें पहुँचा। तब सब वानरवंशी परस्पर कहने लगे, कि बहुरूपिणी विद्या चौबीस दिनमें सिद्ध होती है। यदि इस बीचमें रावणको किसी प्रकार क्रोध उत्पन्न कराया जाय, तो उसे वह विद्या सिद्ध नहीं होगी। यदि विद्या सिद्ध हो गई तो वह इन्द्र-देवादि द्वारा भी दुर्जय हो जायेगा। विभीषणने कहा, कि क्रोध उत्पन्न करानेका प्रयत्न शीघ्र करो।

सब मिलकर श्रीरामके पास गये और उनके सन्मुख रावणको क्रोध उत्पन्न करानेका विचार प्रकट किया। श्रीरामने गम्भीरतापूर्वक कहा, कि यह अन्याय प्रवृत्ति क्षत्रियोंकी नहीं है। नियमधारी जिनमन्दिरमें बैठा हो उसके साथ उपद्रव करना योग्य नहीं है। यह सुनकर सब वानरवंशी लक्ष्मणके समीप गये। उन्होंने वासुदेव लक्ष्मणको सहमत कर लिया। निदान कुछ वानरवंशी विद्याधरकुमार आयुधोंको लेकर भिन्न-भिन्न वाहनों पर आरूढ हो लंकामें प्रविष्ट हुए। नगर-निवासीयोंको अत्यंत शान्त-चित्त तथा धर्माचरणमें संलग्न देख आश्चर्यान्वित हो परस्पर कहने लगे, कि अहो! लंकेश्वरका धैर्य देखो; जिसका भाई और दोनों पुत्र युद्धमें पकड़े गये, अच्छे-अच्छे शूरवीर सामन्त तथा योद्धा रणमें आहत और घायल हुए तो भी उसे तनिक भी चिन्ता नहीं है। इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करते हुए रावणको क्रोध उत्पन्न करानेके अभिप्रायसे आगे बढ़े। विभीषणके पुत्र सुभूषणने कपिकुमारोंसे कहा, कि 'नगरके बाल, वृद्ध और स्त्रियोंको छोड़कर सबको व्याकुल करना'।

कलहप्रिय विद्याधर कुमारोंने निर्भय होकर नगरमें उत्पात करना आरम्भ किया। सुन्दर बाग-बगीचोंको नष्ट-भ्रष्ट कर अनेक महल-मकानोंको ढाहा। यह देख नगर-निवासी अत्यन्त व्याकुल हुए, परन्तु राजाज्ञाके भयसे किसीने कुछ भी न कहा। शान्तिपूर्वक सब कुछ सहन किया। रावणके महलमें भी अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न कर दी। राज-परिवारको व्याकुल देख मन्दोदरीका पिता दैत्य जातिका विद्याधर मय, युद्धके अर्थ राज-

द्वार पर आया, पर मन्दोदरीने उसे शान्त रहने हेतु पतिकी आज्ञाका स्मरण कराया तथा उसे शान्त किया।

वानरवंशी विद्याधर कुमारोंने अपनी मर्यादाको तिलांजली देकर, नगरमें घोर उपद्रव मचाया। नगरका कोट भंग कर उसके वज्र-कपाट तथा दरवाजे तोड़ डाले, सुन्दर उद्यानोंको उजाड़ दिया इत्यादि अनेक प्रकारके उपद्रव समग्र नगरमें किये। जिससे समस्त नगरमें खलबली मच गई। राज-परिवारके लोगोंको अत्यन्त उद्विग्न देख करुणार्द्र होकर श्री शान्तिनाथ चैत्यालयके सेवक, जिन-शासनके देव तथा भैरव विविध ड़रावने आकार किये मन्दिरसे निकले।

उनकी भयंकरता देख कपिकुमार अत्यन्त भयभीत हुए। इन्हें भयभीत देख कटकके देव इनकी सहायतार्थ आये। यह देख यक्षोंके स्वामी पूर्णभद्र तथा मणिभद्रने कहा, कि रावण तो निराहार रहकर निस्पृह तथा शान्तचित्त चैत्यालयमें ध्यानस्थ है। उसे ये कपिकुमार पीड़ा देना चाहते हैं। ऐसा कह दोनों जिनधर्मी यक्षाधीश कटकके देवोंसे युद्ध करनेको उद्यत हुए। यह देख समस्त कपि-कुमार तथा उनके सहायक देव भागकर कटकमें आये। दोनों यक्षाधीश उनके पीछे दोड़े तथा कटकमें आकर श्रीरामसे कहने लगे, कि आप अत्यन्त धर्मात्मा और विवेकी राजा दशरथके पुत्र हैं तथा अयोग्य कार्यके त्यागी हैं। आपकी सेनाके लोग लंकामें घुसकर उपद्रव करते हैं तथा लोगोंको पीड़ा पहुँचाते हैं। यह कहाँकी बात है?'

यक्षाधीशोंकी उलाहना सुनकर लक्ष्मणने कहा, कि 'दुरात्मा रावण, पुरुषोत्तम श्रीरामकी पत्नीको कपटपूर्वक हर ले गया है, तो भी तुम अन्यायी और दुष्टका पक्ष लेते हो? हे यक्षेन्द्र! हमने तुम्हारा क्या अपराध किया है, जो अत्यन्त क्रोधपूर्वक तुम उलाहना देने यहाँ आये हो? सुग्रीवने यक्षेन्द्रोंसे कहा, कि आप क्रोधको छोड़ो। हम लंकामें कोई उपद्रव नहीं करेंगे। यथार्थ बात तो यह है, कि रावण बहुरूपिणी विद्या-साधना कर रहा है, उसे हम उत्तेजित कर विद्या सिद्ध होनेमें बाधा डालना चाहते हैं। यक्षेन्द्रोंने कहा, कि ऐसा ही करो, परन्तु लङ्कामें एक तृणको भी बाधा न पहुँचाना। ऐसा कह दोनों यक्षेन्द्र अपने स्थानको चले गए।

यक्षेन्द्रोंके चले जाने पर सुग्रीवका पुत्र अंगद किहिकंधकांड नामक हाथी पर

आरूढ़ हो अनेक कपिध्वजों सहित लङ्कामें आया। रावणके अत्यन्त अद्भुत महेलमें प्रवेश कर उसके भीतर रत्नजड़ित मन्दिरकी सुन्दरताका अवलोकन कर बहुत ही प्रसन्न हुआ। मणियोंका चोक देख उसे एक छोटा सरोवर समझा फिर यथार्थ निश्चय कर आगे बढ़ा। द्वार पर अंजनगिरि सदृश इन्द्रनील मणियोंसे बने हाथियोंको देख उन्हें सचमुच हाथी समझ सभी कपिकुमार अत्यन्त भयभीत हुए। अंगदने उन्हें कुशल कारीगरोंका चातुर्य समझाया। तब फिर आगे चले। महलकी रचना अत्यन्त अद्भुत थी। अतएव सब जन्मांधके समान महेलमें भटकते फिरते थे। उन्हें स्फटिकमणियोंके महलमें आकाशकी आशंका हुई। कहीं इन्द्रनील मणियोंसे निर्मित भीतोंसे गहन अन्धकार हो रहा था, जिससे उनके मस्तक दीवालोंसे टकराए।

कुछ दूर और जाने पर उन्हें श्री शान्तिनाथ भगवानके चैत्यालयके उत्तुंग धवल शिखर पर दृष्टि पड़ी। उन्होंने पास ही छड़ी लिए खड़े रत्नमय द्वारपालको यथार्थ समझ कर उससे चैत्यालयका मार्ग पूछा। परन्तु वह निर्जीव क्या उत्तर देता? फिर अपना भ्रम निवारण कर कुछ आगे जाने पर एक मनुष्य मिला जो सबको श्री शान्तिनाथ भगवानके चैत्यालयकी ओर ले चला। अङ्गदने सेनाके अन्य आदमियोंको बाहरी चौकमें छोड़कर चैत्यालयमें प्रवेश किया। भक्तिसहित स्तोत्र पढ़कर भगवानकी बन्दना की। सामने रावण पद्मासन लगाये ध्यान कर रहा था। उसे देखकर अङ्गद तिरस्कारपूर्वक बोला, कि 'हे रावण! तूने यह क्या पाखण्ड शुरू किया है? भगवद्भक्ति और अनाचार दोनोंका एकीकरण करनेका असम्भव प्रयत्न कर रहा है! तूझे लज्ञा नहीं आती?' इत्यादि कहकर अङ्गदने उसका उत्तरासन-वस्त्र उतार लिया। हाथमेंसे माला छीन ली फिर उसे दे दी। जिस प्रकार सांड गायोंके यूथमें प्रवेश कर उसे व्याकुल कर देता है, उसी प्रकार अङ्गद और उसके साथियोंने समस्त राज-परिवारके लोगोंको रावणके सन्मुख घसीटकर व्याकुल कर दिया। जिस प्रकार मृगराज मृगीको पकड़ता है, उसी प्रकार अङ्गद मन्दोदरीको पकड़कर रावणके समीप ले आया और कहने लगा कि 'अरे अधम! मैं तेरे प्राणोंसे प्यारी पट्टरानी मन्दोदरीको हर लिए जाता हूँ। यह राजा सुग्रीवकी चंवरग्रहणी चेरी होगी।'

मन्दोदरी अत्यन्त करुणापूर्वक विलाप करती हुई, रावणसे कहने लगी कि 'हे

नाथ! मेरी रक्षा करो! क्या तुम मेरी यह दशा नहीं देखते? क्या तुम ओर ही हो गए? तुम्हारा अपरिमित बल-पौरुष किस दिनके लिए है?' मन्दोदरीके अत्यन्त करुणाजनक रुदन करने पर भी सुमेरुके समान अचल रावण रंच-मात्र भी चलायमान न हुआ। उसकी ध्यानकी स्थिरता एवम् घोर उपद्रव होने पर भी चित्तमें कोई विकार उत्पन्न न होनेके कारण, उसे तत्काल बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई और वह समस्त दिशाओंको प्रकाशित करती हुई 'जय ....जय' शब्द कर रावणके समीप आकर खड़ी हो कहने लगी, कि हे देव मैं तुम्हें सिद्ध हुई, मुझे स्वीकार करो! चक्रवर्ती तथा अर्धचक्रवर्तीको छोड़ जो तुम्हारी आज्ञासे विमुख हो उसे मैं वश करुं। रावणने अभिष्ट विद्याको अंगीकार कर पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया। फिर चैत्यालयकी प्रदक्षिणा देकर सिद्धोंको नमस्कार किया। अंगद रावणको विद्या सिद्ध हुई देख मन्दोदरीको वहीं छोड़ आकाशमार्गसे अन्य साथियों सहित कटकमें आ गया।

रावणकी अट्ठारह हजार रानियाँ एक साथ रुदन कर कहने लगी, कि 'नाथ! आपकी उपस्थितिमें दुष्ट अङ्गदने हमारा इतना अपमान किया?' रावणने सबको सान्त्वना देकर कहा, कि 'हे प्रिये! वह पापी मृत्युपाशमें बंधा है। तुम शोकको छोड़ पूर्ववत् आनन्दसे रहो। मैं सुबह होते ही सुग्रीवको निग्रीव (मस्तक रहित) करूँगा। अब तो मुझे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई है। जिसके प्रयोगसे मेरा कोई भी शत्रु जीवित न बचेगा'। इस प्रकार महामानी रावण अपनी समस्त रानियोंको सान्त्वना दे, शत्रुओंको मरा ही समझ, अनेक वादित्रों सहित उल्लाससे भरा हुआ चैत्यालयसे बाहर निकल कर महलमें आया। अनेक स्त्रियोंने मिलकर सुगंधित द्रव्यमिश्रित निर्मल जलसे अभिषेक कर सुंदर वस्त्राभूषण पहनाये। फिर भगवानकी पूजा कर, अशन, पान, खाद्य, चार प्रकारका शुद्ध एवं स्वादिष्ट आहार किया। कुछ देर विश्राम कर बहुरूपिणी विद्याकी परीक्षा करनेके निमित्त क्रीड़ा-भूमिमें गया। वहाँ उसने बहुरूपिणी विद्याके बलसे अपने अनेक रूप बनाये तथा हाथकी चोटसे भूकम्प किया। फिर मायामय कटक बनाकर रावण सीताके समीप चला।

महासती सीता रावणको बहुरूपिणी-विद्या-संयुक्त देख भयभीत हो मनमें विचारने लगी, कि मैं मन्दभागिनी श्रीराम-लक्ष्मण तथा भाई भामण्डलको हता न सुनूँ। इतनेमें

बहुरूपिणी विद्या द्वारा रावणका सीताको अपनी पत्नी बनाने हेतु मनाना व सीताका रुदन

रावण आकर सीतासे कहने लगा, कि 'देवी! मैंने कपटपूर्वक तेरा हरण कर क्षत्रियोंके विरुद्ध कार्य किया। कर्मकी गति ऐसी ही है। एक समय मैंने अनन्तवीर्य स्वामीके समक्ष व्रत लिया था, कि जो परस्त्री मुझे न इच्छेगी, उसे मैं बलात्कार सेवन न करूँगा। इस प्रतिज्ञाको पालते हुए अब तक मैंने तेरी कृपा ही की, अभिलाषा रक्खी। 'हे सुन्दरी! अब तू अपने अवलम्बन राम-लक्ष्मणको मेरे इन तीक्ष्ण-बाणोंसे बिधा ही जान एवं पुष्पक विमानमें बैठ मेरे संग आनन्दपूर्वक विहार कर।'

सीताने अत्यन्त गद्-गद् वाणीसे कहा, कि 'हे दशानन! कदाचित् संग्राममें तेरे तथा मेरे वल्लभके शस्त्र प्रहार हो तो मेरे प्रीतमको मारनेके पूर्व उनसे कहना, कि हे पद्म! भामण्डलकी बहिन सीताने कहा है, कि तुम्हारे असह्य वियोगसे मैं अत्यन्त दुःखित हूँ। तथा तुम्हारे जीवन तक ही मेरा जीवन है, एक तुम्हारे दर्शन मात्रकी अभिलाषासे ये प्राण टिक रहे हैं'—इतना कहकर सीता मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।

रावण महासती सीताकी यह अवस्था देख मनमें अत्यन्त दुःखित हुआ तथा विचारने लगा, कि 'इनके परस्पर गाढ स्नेहका क्षय नहीं। मुझे धिक्कार है, कि मैंने ऐसे युगलका वियोग किया। मैं महानीचके समान होकर निष्कारण अपयशरूपी मलसे लिप्त हुआ। अब तक मुझ पामरको यह सीता देवांगनाओंसे अधिक प्रिय तथा सुन्दर प्रतीत होती थी, परन्तु अब तो यह विष-कुम्भके सदृश प्रतीत होने लगी। यह तो केवल राममें ही तन्मय है। हाय! मैंने अपने भाई विभिषण तथा बुद्धिमान मन्त्री मारीचादिका कहना न माना। सचमुच मुझे रामसे मैत्री करना ही श्रेयस्कर था। अब यदि मैं सीताको रामके पास भेजता हूँ तो लोग मुझे भीरु तथा असमर्थ कहेंगे और यदि युद्ध करता हूँ तो निष्कारण महा हिंसा होगी। हाय! इस समय मैं सामान्य पुरुषोंके सदृश उभय संकटमें पड़ा किंकर्तव्य-विमूढ़ सा हो रहा हूँ।'

रावणने इस प्रकार अनेक विकल्पों सहित अत्यन्त पश्चात्ताप कर अन्तमें निश्चय किया कि 'मैं युद्धमें राम-लक्ष्मणको शस्त्ररहित कर उन्हें जीवित पकडूँगा। तदन्तर उन्हें सीता सहित बहुत सी सम्पत्ति दूँगा जिससे संसारमें मेरी बहुत कीर्ति होगी। राम-लक्ष्मण न्यायमार्गी हैं अतएव उन्हें छोड़कर सूग्रीव, अंगद, भामण्डल आदि दुष्ट विद्याधरोंको

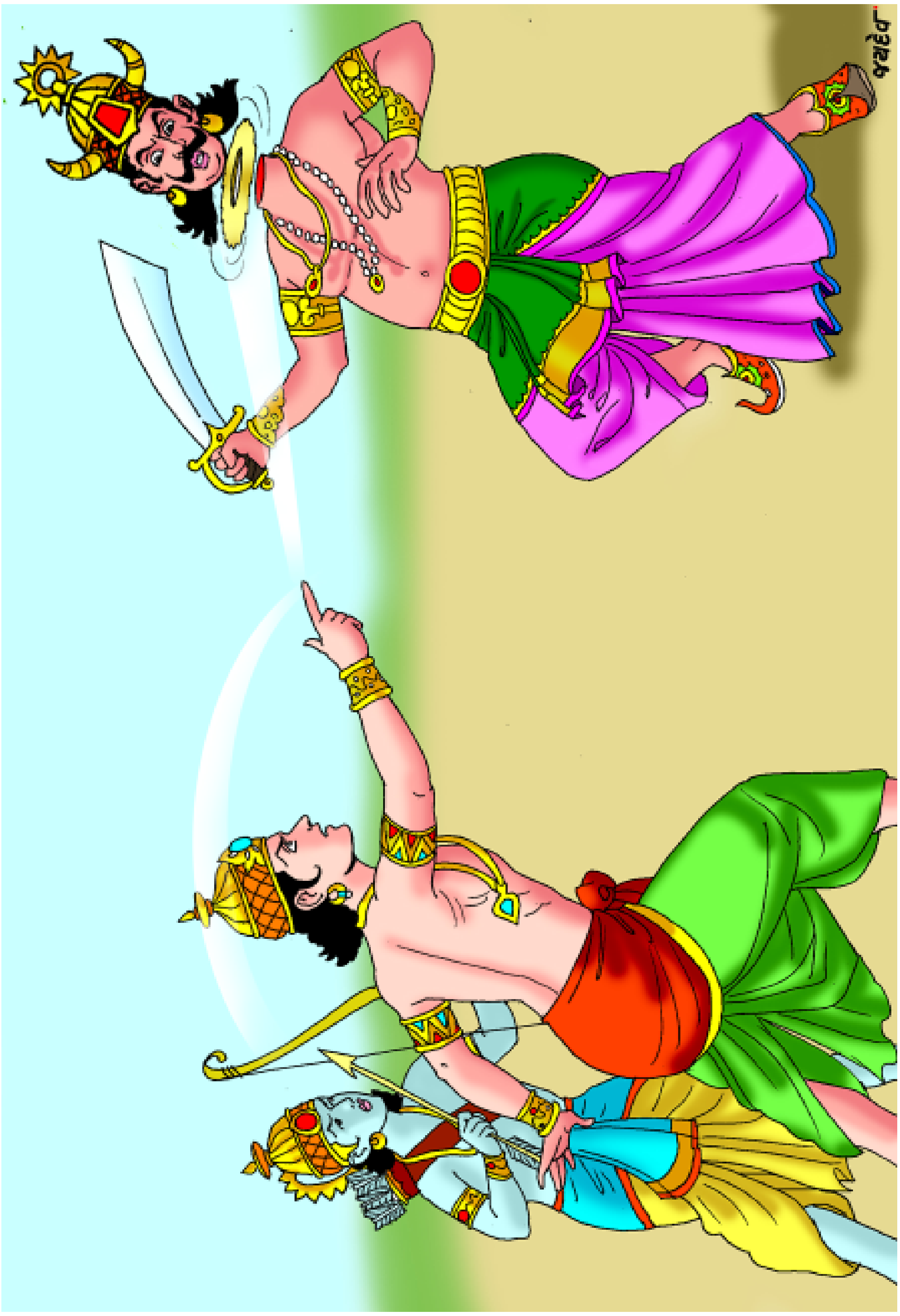

रावणके साथ राम-लक्ष्मणकी लड़ाईमें लक्ष्मण द्वारा रावणका वध

करौंत, मुगदर तथा चन्द्रहाससे अवश्य प्राणरहित करूँगा, क्योंकि इन्होंने मेरे ही समक्ष महलमें मेरी रानियोंके साथ अत्यन्त घृष्टतापूर्वक अनीतिका व्यवहार किया है। मैं इन्हें जीतकर भाई और पुत्रोंको छुड़ा लाऊँगा। तीर्थंकर, बलभद्र और नारायण हम सरीखे विद्याधरोंके कुलमें ही उत्पन्न होते हैं।

जब रावणके हृदयमें इन नाना प्रकारके विकल्पोंका प्रादुर्भाव हो रहा था, तब उसकी मृत्यु-सूचक अनेकों अपशकुन हुए। पुण्य क्षीण होने पर इन्द्र भी बच नहीं सकते, तब विद्याधर और मनुष्यकी तो बात ही क्या? धुरंधर राजनीतिज्ञ, समस्त शास्त्रोंमें प्रवीण, महापराक्रमी और विद्याधर महेश्वर रावण कर्म प्रेरणासे अनीति पथानुगामी होकर गर्वसे नितांत विवेकशून्य हो गया। उसके समस्त क्रूर ग्रह आकर इकट्ठे हुए। अतएव अन्तमें रणका ही अभिलाषी हुआ। जिस जीवने जैसे कर्म संचित किए होते हैं वह वैसा ही फल अनिवार्यरूपसे भोगता है।

ऐसी बहुरूपिणी विद्या प्राप्त करने पर भी रावण अन्ततः युद्धमें लक्ष्मणके हाथों मारा गया। अतः परस्त्रीसेवनके परिणाम त्यागने योग्य है एवम् विद्याओंके गर्वके परिणाम त्यागकर एक निज ज्ञायकभावके महिमा तद्रूप वर्तना ही मोक्षमार्ग है।

ऐसा मोक्षमार्ग ही हमें प्राप्त हो, ऐसी भावना।

विदेहक्षेत्रस्थ भगवान श्री सीमंधरस्वामी गर्भकल्याणकादि ४ कल्याणक

इस अवनी पर मध्यलोकमें जम्बूद्वीप थालीके आकारका है उसके पश्चात् एक-दूसरेमें बिठाई हुई चूड़ियोंकी भांति जम्बूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप व समुद्र हैं। उनमें बिलकुल मध्यमें जम्बूद्वीप है, उसको घेरकर लवणसमुद्र, उसको घेरकर धातकीखण्ड द्वीप, उसको घेरकर कालोदधि समुद्र, उसको घेरकर पुष्करवर द्वीप और उसके चारों ओर पुष्करवर समुद्र है–ऐसे एक द्वीप, एक समुद्र, एक दूसरेको घेरकर असंख्यात द्वीप-समुद्र इस अवनी पर रहे हुए है, इतना ही नहीं वे एक-दूसरेसे दूने-दूने विस्तारवाले होते हैं।

उसमेंसे तीसरे पुष्करवर द्वीपके बीचोंबीच एक महा पर्वत है, जिसका नाम मानुषोत्तर पर्वत है। वह पुष्करद्वीपके समरूपसे दो भाग करता है। इस भांति जम्बूद्वीप, धातकीखंड व कालोदधिको छूता हुआ पुष्करार्द्ध भाग मिलकर ढाई द्वीप कहे जाते हैं। इन ढाईद्वीप तक ही मनुष्योंका विचरण है, अर्थात् यह ढाई द्वीप ही मनुष्यलोक है। इसके ठीक ऊपर लोकाकाशके अंत भागमें सिद्धशिला अर्थात् सिद्ध भगवान बिराजते हैं।

इन जम्बू आदि ढाई द्वीपमेंसे जम्बूद्वीपमें १, धातकीखण्ड़में २, पुष्करार्द्ध द्वीपमें दो-दो ऐसे कुल पांच-पांच भरतादि सात क्षेत्र, छ कुलाचल-पर्वतोंसे बन जाते हैं। जिनके नाम हैं भरत, हैमवत्, हरिक्षेत्र, विदेहक्षेत्र, रम्यक्क्षेत्र, हैरण्यवत् क्षेत्र व ऐरावत क्षेत्र उनमेंसे मात्र भरत, विदेह व ऐरावतक्षेत्रमें ही कर्मभूमि है, अर्थात् 'जहाँ शुभ और अशुभकर्मोंका आश्रय हो वह कर्मभूमि है'। वैसे तो तीनलोक ही कर्मोंका आश्रय है, फिर भी यहाँ उसकी प्रकृष्टता बताने इन्हें कर्मभूमि कहते हैं। (जैसे सातवें नरकको प्राप्त करनेवाला अशुभकर्म और सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त करनेवाला शुभकर्मका उपार्जन भी यहीं पर होता है। पात्र दानादिके साथ कृषि आदि छह प्रकारके कर्मका आरम्भ भी यहीं पर होता है, इसलिये भी भरत, ऐरावत, विदेहक्षेत्रोंको कर्मभूमि जानना चाहिये।)

इस भांति इस अवनी पर ऐसे पाँच भरतक्षेत्र, पाँच विदेहक्षेत्र, पाँच ऐरावतक्षेत्र हैं। उनमेंसे विगतदेह अर्थात् देह रहित सिद्ध भगवान विदेह कहलाते हैं, क्योंकि उनके कर्मबन्धनका उच्छेद हो गया है अथवा देहके होते हुए भी जो कुछ भी शरीरके संस्कारोंसे

रहित हैं ऐसे अर्हन्त भगवान विदेह हैं। उनके योगसे उस देशको भी विदेह कहते हैं। वहाँ रहनेवाले मनुष्य देहका उच्छेद करनेके लिये यत्न करते हुए विदेहत्वको प्राप्त किया करते हैं।

प्रश्न : इस प्रकार तो भरत व ऐरावत क्षेत्र भी विदेह कहलायेंगे क्योंकि यहाँसे भी जीव विदेहको (देह रहित दशाको) प्राप्त होते हैं।

उत्तर : होते अवश्य हैं परंतु सदा नहीं, कभी, कभी होते हैं और विदेहक्षेत्रोंमें तो निरंतर धर्मका अभाव नहीं होता अर्थात् वहाँ धर्मकी धारा अविच्छिन्नरूपसे बहती है। इसलिये वहाँ सदा विदेही जिन (अर्हन्त भगवान) रहते हैं। अतः प्रकर्षकी अपेक्षा ही उस क्षेत्रको विदेह कहा जाता है।

उन पाँच विदेहक्षेत्रोंके प्रत्येक विदेहक्षेत्रमें ३२-३२ विजय(क्षेत्र) होते हैं, अतः पाँच विदेहक्षेत्रोंमें कुल (३२×५)=१६० विजय(क्षेत्र) होते हैं और वहाँ उत्कृष्टमें एक साथ १६० तीर्थंकर विचरते हैं व जघन्यरूपसे प्रत्येक विदेहक्षेत्रमें ४ तीर्थंकर सदा विचरते है। (जैसे : पूर्व-उत्तर विदेह-१, पूर्व दक्षिण विदेह-१, पश्चिम-उत्तर विदेह-१, पश्चिम-दक्षिण विदेह-१ ऐसे कुल ४) ऐसे जम्बूद्वीपमें चार तीर्थंकर विचरण कर रहे है। ऐसे पाँच विदेहक्षेत्रमें कमसे कम कुल ५×४=२० तीर्थंकर तो हमेंशा शाश्वत नामवाले विचरते हैं। जिसमें जंबूद्वीपके भगवानके नाम सीमंधरस्वामी, युगमंधरस्वामी, बाहुस्वामी और सुबाहुस्वामी है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी पूर्वभवमें श्री सीमंधरस्वामीके विजयमें फतेहमंद राजकुमार थे, उनके साथ पूज्य बहिनश्री चंपाबेन भी वहाँ देवकुमार नामके बालब्रह्मचारी फतेहकुमारके मित्र थे। वे भगवान सीमंधरनाथके समवसरणमें भगवानका लाभ लेते थे। उस समय जंबूद्वीपके भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव, सीमंधर भगवानके विरहतापके कारण सदेह चारणऋद्धि या देवों द्वारा सीमंधरनाथके दर्शन करने पधारे थे। वहाँ उन्होंने एक सप्ताह तक भगवानका लाभ लिया था। वहाँ भगवानकी वाणीमें यह भी आया था कि 'ये फतेहमंदकुमार यहाँसे जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें जन्मेंगे और वहाँ कुंदकुंदाचार्यदेवका मार्ग प्रवर्तावेंगे तथा भविष्यमें धातकीखंडके पूर्व विदेहमें सूर्यकीर्ति व सर्वांगस्वामी नामक तीर्थंकर होंगे।' पूज्य गुरुदेवश्री व पूज्य बहिनश्री चंपाबेन पर भगवान सीमंधरनाथका अनन्य उपकार है। इसलिये स्वर्णपुरीमें सीमंधर भगवानकी बाहुल्यता है।

वर्तमानमें श्री सीमंधर भगवान ४ कल्याणक प्राप्त अर्हन्तदशामें विराजमान हैं।

भगवान श्री सीमंधरस्वामी गर्भकल्याणक

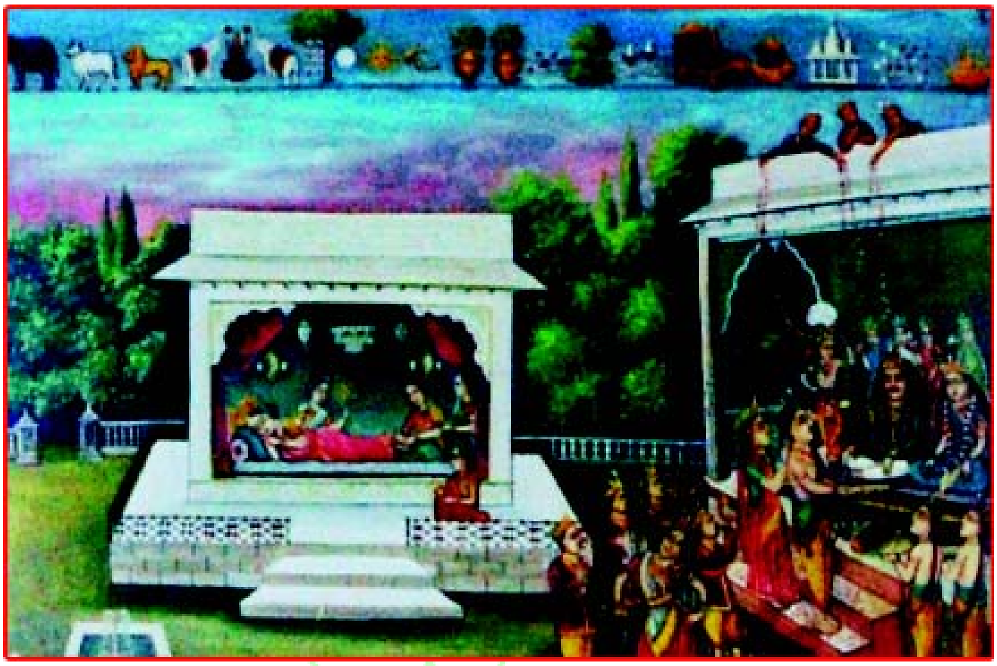

भगवानके माताके गर्भमें आनेसे पूर्व छ माससे माता-पिताके घर १५ मास तक रत्नोंकी वर्षा होती है। रात्रिके पिछले प्रहरमें माता सत्यवतीने सोलह स्वप्न देखे और स्वप्न देखनेके बाद अपने मुँहमें प्रवेश करते हुए सिंह / हाथीको देखा। उसी समय स्वर्गको छोड़कर उनके गर्भमें भगवानने प्रवेश किया। प्रातः होते ही रानीने स्नान कर पतिदेव महाराज श्रेयांसराजासे स्वप्नोंका फल पूछा। उन्होंने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा–हे प्रिये, तुम्हारे गर्भसे नव माह बाद तीर्थंकर पुत्रका जन्म होगा। वह सारे संसारका कल्याण करेगा–लोगोंको सच्चे रास्ते पर लगावेगा। पतिके वचन सुन माता सत्यवती हर्षके मारे फूली न समाती थी। उसी समय चारों निकायके देवोंने आकर भावी तीर्थंकर सीमंधरके गर्भावतरणका उत्सव किया तथा उनके माता-पिता और गर्भगत बाल सीमंधरका उचित सत्कार किया। माताकी सेवामें अष्टकुमारिका देवीयोंको नियुक्त किया।

भगवान श्री सीमंधरस्वामीका जन्मकल्याणक

गर्भकालके नौ माह पूर्ण होने पर माता सत्यवतीके गर्भसे भगवान सीमंधरस्वामीका जन्म हुआ। उस समय अनेक शुभ शकुन हुए थे। वे सम्यग्दर्शन सहित तीन ज्ञानके धारी थे। उनके जन्मोत्सवके समय तीन लोकमें शांति हो गई थी। उनकी उत्पत्तिसे देव, दानव, मृग और मानव सभीको हर्ष हुआ था। इन्द्रोंनें चारों निकाय सहित देवोंके साथ आकर जन्मोत्सव मनाने बाल भगवानको ऐरावत हाथी पर बिठाकर मेरु पर्वत पर ले गये, वहाँ १००८ कलशोंसे बालक भगवानका जन्माभिषेक किया। उसी समय इन्द्रने प्रभुके सामने ताण्डव नृत्य सहित अनहद भक्तिनृत्य किये थे। उस समय पुंडरीकिणी (पुष्कलावती) विजय अपनी सजावटसे स्वर्गको भी पराजित कर रहा था। देवराजने इनका नाम 'सीमंधर' रखा था। जन्मोत्सवकी विधि समाप्त कर देव लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये। राज-परिवारमें बालक सीमंधरका बहुत प्यारसे लालन-पालन होने लगा। वे द्वितीयाके इन्दुकी तरह दिन-प्रतिदिन बढ़कर कुमार-अवस्थामें प्रविष्ट हुए। कुमार सीमंधरको जो भी देखता था, उसकी आँख हर्षके आँसुओंसे तर हो जाती थीं। मन आनन्दसे गद्गद् हो जाता था और शरीर रोमाञ्चित हो जाता था। इन्हें अल्पकालमें ही समस्त विद्यायें स्वतः प्राप्त हो गई थीं। कुमार सीमंधरके अगाध पाण्डित्यको देखकर अच्छे-अच्छे विद्वानोंको भी दाँतों तले अंगुलियाँ दबानी पड़ती थीं। विद्वान होनेके साथ-साथ वे शूरता, वीरता और साहस आदि गुणोंके अनन्य आश्रय थे।

भगवान श्री सीमंधरस्वामीका तपकल्याणक

जब धीरे-धीरे वे युवा उम्रके हुए और उनके शरीरमें यौवनका पूर्ण विकास हो गया, तब एक दिन महाराज श्रेयांसने उनसे कहा—'प्रिय पुत्र! अब तुम पूर्ण युवा हो गये हो, तुम्हारी गम्भीर और विशाल आँखें, तुम्हारा उन्नत ललाट, प्रशान्त वदन, मन्द मुस्कान, चतुर वचन, विस्तृत वक्षस्थल और घुटनों तक लम्बी तुम्हारी भुजायें तुम्हें प्रत्यक्ष महापुरुष सिद्ध कर रही हैं। अब तुम्हारे अन्दर खोजने पर भी वह चंचलता नहीं पाता हूँ जो बाल्यावस्थामें थी। अब यह समय तुम्हारे राज-कार्य संभालनेका है। मैं अब वृद्ध हो गया हूँ और कितने दिन तक तुम्हारा साथ दे सकूँगा? मैं तुम्हारा विवाह कर तुम्हें राज्य देकर संसारकी झंझटोंसे बचना चाहता हूँ। पिताके वचन सुनकर सीमंधरस्वामीका प्रफुल्ल मुखमण्डल सहसा गम्भीर हो गया और बारह भावना भाते हुए अत्यंत वैराग्यवंत भावसे भीगे-भीगे स्वरमें माता-पितासे भगवती जिनदीक्षा हेतु निवेदन किया। उन्होंने स्थिर-चित्त होकर संसारकी परिस्थितिका पूर्ण विचार किया और वनमें जाकर दीक्षा लेनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। उसी समय पिताम्बर पहने हुए लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और उनके दीक्षा धारण करनेका विचारोंका समर्थन किया। अपना नियोग पूर्ण कर, लौकान्तिक देव अपने स्थानों पर वापिस चले गये। उनके जाते ही असंख्य देव-गण जय-घोष करते हुए भगवानको पालकीमें बिठाकर आकाशमार्गसे वनको चल दिये। वहाँ प्रभुने 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर अंतरंगमें सामायिक व्रतकी शुद्धि सह प्रतिज्ञा ग्रहण कर वस्त्राभूषण उतार दिये। पंच मुष्टियोंसे अपने केश उखाड डाले। इस तरह बाह्य और अभ्यंतर परिग्रहोंका त्याग कर वे आत्मध्यानमें लीन हो गये। विशुद्धताके बढ़नेसे उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो गया। 'दीक्षाकल्याणक'का उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने-अपने स्थानों पर चले गये।

भगवान श्री सीमंधरस्वामीका ज्ञानकल्याणक

एक दिन भगवान ध्यानकी उत्कृष्टतासे अपनी अंतर परिणतिको शुद्ध स्वाभाविक बनाते हुए क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए और चार कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। उस ही समय इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरणकी रचना की। समवसरणकी अद्‌भुतता देख कुबेर स्वयं आश्चर्यचकित था क्योंकि सुंदर समवसरणकी रचना बननेमें प्रभुकी ही कृपा थी। वहाँ भगवान सीमंधरस्वामी चतुर्मुख कमलासन पर अंतरीक्षमें विराजमान हुए। उस ही समय १२ सभामें देव-देवीयाँ, मनुष्य, तिर्यंच आदि सभी एक साथ भगवानकी देशना सुनने लगे। आज तक सीमंधरस्वामी भगवान अर्हन्त अवस्था ही में विराजमान हैं, भविके भाग्यवश अभी भी जीवोंको उनकी दिव्यध्वनि सुननेका सौभाग्य मिल रहा है।

तीर्थराज सम्मेदशिखर

श्री सम्मेदशिखरजी शाश्वत महापवित्र सिद्धक्षेत्र है, क्योंकि अनंत चौबीसीके तीर्थंकर तथा अन्य अनंत मुनिवर वहाँसे मोक्ष पधारे हैं। अतः उसके दर्शन करते अनंत सिद्ध भगवंतोंका स्मरण होता है। यहाँसे अन्तमें वर्तमानके तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान मोक्ष पधारे होनेसे इस तीर्थक्षेत्रका नाम वर्तमानमें 'पारसनाथ हिल'के रूपमें प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण तीर्थक्षेत्रोंमें सर्वप्रमुख इस तीर्थक्षेत्रकी वंदना करना प्रत्येक जैन अपना परम अहोभाग्य समझता है। ऐसी अनुश्रुति है, कि श्री सम्मेदशिखरजी व अयोध्या दो तीर्थ अनादिनिधन शाश्वत हैं। अयोध्यामें सभी तीर्थंकरोंका जन्म व सम्मेदशिखरजीसे सभी तीर्थंकरोंका निर्वाण निश्चित है, किन्तु हुण्डावसर्पिणीमें कालदोषसे इस कालमें शाश्वत नियममें व्यतिक्रम हो गया और अयोध्यामें केवल पांच तीर्थंकरोंका जन्म व सम्मेदशिखरसे २० तीर्थंकरोंके निर्वाणकल्याणक सम्पन्न हुए। फिर भी अनन्त तीर्थंकर भगवान अपनी अमृतवाणी तथा दिव्य देशनासे इस तीर्थको पवित्र बना चुके हैं। इस कालके २० तीर्थंकर और अनंतानंत मुनिगण सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए हैं। मधुकैटभ जैसे दुराचारी

प्राणी भी यहाँके पवित्र वातावरणमें आकर पवित्र हो गये व स्वर्ग सिधारे। निःसंदेह इस तीर्थराजकी महिमा अपार है। इसके कण-कण भी पूज्य हैं, क्योंकि यहाँसे कई मुनि भगवंत विचरे हैं व मोक्ष गये हैं। इन्द्रादिक देव भी इसकी वंदना करके अपना जीवन सफल समझते हैं। सम्मेदशिखरजीकी वंदना करते समय इस सिद्धांतको ध्यानमें रखें, कि अनंत तीर्थंकर यहाँसे सीधे सिद्धशिला पर बिराजमान हैं, अतः इस स्मृतिको स्मरणरूप करके, इस क्षेत्रकी यात्रा करके अपनेको धन्य बनायें। द्रव्य, काल, भावकी मंगलताकी भांति ही यह क्षेत्र मंगल है। इस भांति यहाँ द्रव्य, क्षेत्रादि चारों ही मंगलता एक साथ होनेसे यह क्षेत्र सर्वोत्कृष्ट मंगल है।

दिगम्बर परम्पराके अनुसार तीर्थंकर भगवान जिस स्थानसे मुक्त होते हैं; उस स्थान पर सौधर्मेन्द्र, चिह्न स्वरूप स्वस्तिक बना देते हैं। जिसका इस सम्मेदरूपी शिखर पर भव्य जन, पुण्योदयसे कष्ट उठाकर भी पुण्योदयसे दर्शन कर उनका संस्मरण करते थे। बादमें उन स्थानों पर भव्यजन 'चरणचिह्न' सहित सुन्दर टोंक निर्मित करते हैं। कहते हैं, कि राजा श्रेणिकके समयमें वे अतीव जीर्ण अवस्थामें थीं। अतः उन्होंने स्वयं उनका जीर्णोद्धार करवाया व भव्य टोकें निर्मित करवा दी।

सन् १६७८में यहाँ पर दिगम्बर जैनोंका एक महान जिनबिम्ब प्रतिष्ठोत्सव हुआ था। उस समय स्वर्णभद्र टोंक पर पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमाजी विराजमान की थी उस समय पहले पालगंजके राजा इस तीर्थकी देखभाल करते थे। बादमें दिगंबर जैनोंका यहाँ जोर हुआ, लेकिन मुसलमानोंके आक्रमणसे यहाँका मुख्य मन्दिर नष्ट हो गया। तब एक स्थानीय जमींदार भगवान पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको अपने घर उठा ले गया। वह यात्रियोंसे कर वसूल करके उनके दर्शन कराता था। जो कुछ भेंट चढ़ती थी, वह ले लेता था। ई.सन् १८२०में कर्नल मैकेजीने अपनी आँखोंसे यह दृश्य देखा था। पार्श्वनाथकी टोंकवाले मन्दिरमें प्राचीनकालसे ही दिगम्बर प्रतिमा होनेके प्रमाण मिलते हैं।

इस क्षेत्रकी तलहटी कई मंदिर, मानस्तंभ आदि जिनवैभवसे सुशोभित हैं। यहाँ तेरापंथी कोठीमें बीच चोकमें चन्द्रप्रभ भगवानके मंदिरके पासमें भगवान सीमंधरस्वामीकी चरणपादुका भी हैं। पर्वत पर चढ़ते चढ़ते वनवृक्षोंके समूह देख वनमें विचरते मुनि

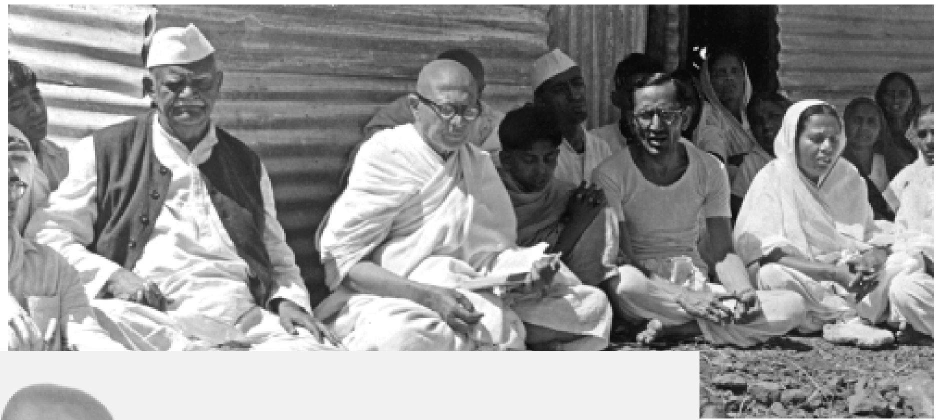

सम्मेदशिखरमें
जिनेन्द्रभक्ति
एवं
क्षुल्लकश्री
गणेशप्रसाद
वर्णीजीके साथ
पूज्य गुरुदेवश्री

भगवंतोंकी स्मृति हुए बिना नहीं रहती। पहाड़ पर मोक्षकल्याणकके स्थल पर इन्द्र स्वस्तिक अंकित करते है, वहाँ पीछेसे लोगोंने चरणपादुका सह टोंक बनाई है। उसमें सबसे ऊँची स्वर्णभद्र टोंक पर हालमें पार्श्वनाथ भगवानके (चरणचिह्न) हैं।

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं पूज्य बहिनश्री चंपाबेनने संघसहित दो बार यहाँकी यात्रा की। शिखरजीको देखते ही पूज्य गुरुदेवश्री व पूज्य बहिनश्रीको बिछुड़े हुए बालकका मातासे मिलन होने पर होते आनंद जैसा आनंद था। अतः उन्होंने बड़े भावसे तीर्थक्षेत्रकी वंदना की थी।

बाल ब्रह्मचारी श्री वासुपूज्य भगवानकी निर्वाणभूमि चंपापुरी

भरतक्षेत्रके जंबूद्वीपके अंगदेशकी राजधानी चंपापुरी, वर्तमान चौबीसीके बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य भगवानके चरणोंसे धन्य बन गई। प्रभुके गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक, केवलज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक पाँचों ही कल्याणक इस पावनभूमि पर ही हुए। यह एक ही ऐसा स्थल है, कि जहाँ वर्तमान चौबीसीके एक ही तीर्थंकरके पांचों ही कल्याणक हुए हों।

पुराण ऐसा बताता है, कि कई पुराण पुरुषोंका सम्बन्ध इस प्राचीन नगरीसे रहा है। इस नगरीके चम्पानालेके पास एक प्राचीन मंदिर है, जब वहाँ भूकम्प हुआ तब वहाँकी सभी दिगम्बर प्राचीन प्रतिमाएँ चम्पापुरके नाथनगरके मंदिरमें बिराजमान कर दी थी।

यह नगरी भागलपुरसे ५ कि.मी. दूर है। वर्तमानमें नाथनगरके नामसे प्रसिद्ध इस चंपापुरीमें ४ कल्याणक हुए। उस विशाल नगरकी एक पहाड़ी जो मंदारगिरिके नामसे प्रसिद्ध है, उस पर प्रभुका मोक्षकल्याणक हुआ। निर्वाण महोत्सव मनाने असंख्य देव आए होंगे उस समयकी क्या बात! अहो! कैसा भव्य दृश्य!

यह तीर्थक्षेत्र अति रमणीय है। इस क्षेत्रमें भव्य सुन्दर, विशाल एवं नवीन जिनमंदिर दर्शनीय हैं। इसीके अन्तर्गत प्राचीन मंदिर है। इस मंदिरके चारों दिशामें चार मानस्तंभ थे। उसमेंसे वर्तमानमें दो ही विद्यमान हैं। उस मंदिरमें मूलनायक

वासुपूज्यजीकी श्यामवर्ण प्रतिमा वि. सं. १९४७ (ई.स. १८९१)की प्रतिष्ठित है। यहीं पर कभी प्रख्यात हरिवंशकी स्थापना हुई थी। यह नगर गंगातट पर बसा था। जहाँ धर्मघोष मुनिने समाधिमरण किया था। गंगा नदीके चम्पानाले पर एक प्राचीन जैन मंदिर दर्शनीय है। इस सिद्धक्षेत्रमें पद्मरथ, अंचल, अशोक आदि अनेक मुनि मुक्त हुए हैं। नाथनगरके निकट तीन दिगंबर जिन मन्दिर हैं।

इतिहासानुसार प्राचीनकालमें ५०-६० कि.मी. तक फैली यह चम्पापुरी नगरी बहुत ही विशाल थी। उसमें ५० कि.मी. दूरी उपर उसके एक बगीचेमें 'मंदारगिरि' पर्वत एक ही पत्थरका है, यहाँसे वासुपूज्य भगवान मोक्ष पधारे थे। उस 'मंदारगिरि' पर दो मंदिर हैं, उसमेंसे एक मंदिरमें तीन चरणपादुका हैं, जो वासुपूज्य भगवानके जन्म, दीक्षा व ज्ञानकल्याणक सम्बन्धित हैं। दूसरे मंदिरमें एक चरणपादुका है, जो वासुपूज्य भगवानके मोक्षकल्याणक सम्बन्धित है।

वि.स. २०१३ (ई.स. १९५७)में पूज्य गुरुदेवश्रीने इस क्षेत्रकी ससंघ यात्रा की थी। इस क्षेत्रके परिसरमें पीपलका पेड़ है। उस समय पूज्यश्रीने मुमुक्षुओंको वहाँके इस वृक्षको नजदीकसे दिखाकर, पीपलका दृष्टांत संक्षेपमें बताते हुए, उस परसे [1]सिद्धान्त भी बताया था। यहीं पर पूज्य गुरुदेवश्रीने अतिभावसे वासुपूज्य भगवानका प्रथमबार अभिषेक किया था। वैसे पूज्य गुरुदेवश्रीने जिनेन्द्र भगवानके चरणोंके अभिषेक कई सिद्धक्षेत्रोंमें किए थे। पर यह भगवानकी प्रतिमाके जन्माभिषेक समा इस अभिषेकको प्रथम बार देख पूज्य गुरुदेवश्रीको व मुमुक्षुओंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

पूज्य गुरुदेवश्रीने दूसरी बार वि.सं. २०२३ (ई.स. १९६७)में इस तीर्थकी ससंघ यात्रा की थी।

ऐसे चंपापुर सिद्धक्षेत्रको तथा वहाँ समश्रेणीपर विराजमान सिद्ध भगवंतोंको कोटि-कोटि वंदन।

---

१. पीपल=जो चौसठ प्रहर पीसी जाती है और उसका गुण चरपराई तथा हरा रंग प्रगट होता है। इस परसे पूज्य गुरुदेवश्री जीव द्रव्यका सिद्ध भगवानके समान सामर्थ्य सिद्ध करते थे।

बाल ब्रह्मचारी भगवान श्री महावीरकी निर्वाणभूमि
पावापुरी

भरतभूमिके अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामीकी निर्वाणभूमि 'पावापुरी' है। शासननायक वीरप्रभुने यहीं योगनिरोध किया और यहींसे मोक्ष पधारे। अतः ये पावन तीर्थभूमि है।

इसका प्राचीन नाम 'अपापापुर' अर्थात् (पाप रहित) पुण्य भूमि है। जिस स्थान पर भगवानने निर्वाण प्राप्त किया था, वहाँ 'पद्म सरोवर' नामक एक विशाल एवं सुन्दर सरोवर है। एक किवदंतीके अनुसार भगवानके निर्वाणके समय यह समतल क्षेत्र था और यहाँ कल्याणक मनाने असंख्य देव-देवियाँ एवं नर-नारी एकत्र हुए थे। भगवानका निर्वाण होने पर उपस्थित जनसमूहने भक्तिभावसे विह्वल हो, उस स्थानकी धूल मस्तक पर धारण की। हर एकने केवल एक-एक चुटकी धूल ली, पर भीड़ इतनी अधिक थी, कि एक-एक चुटकी धूल लेनेसे ही यह सरोवर बन गया। इस सरोवरके मध्य-श्वेत संगमरमरका एक जैन मन्दिर है, जो जल मन्दिर कहलाता है। अनुमानतः इस

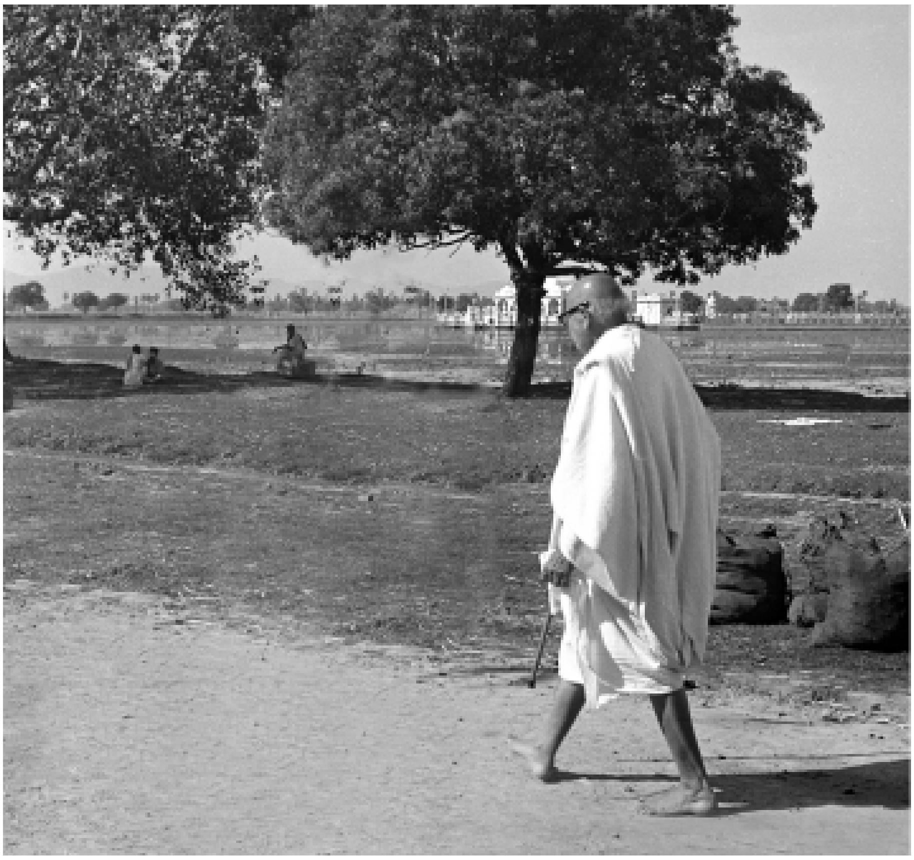

पावापुरीके जलमंदिरमें दर्शनार्थ जाते पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

मन्दिरका निर्माण दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व 'नन्दिवर्धन' नामक राजाने करवाया था। उन्होंने भक्तिवश इसकी नींव स्वर्ण ईंटोंकी रखी थी। कुछ वर्ष पूर्व मन्दिरके जीर्णोद्धारके समय प्रकाशमें आई बड़ी-बड़ी ईंटे इसके दो-ढाई हजार वर्ष प्राचीन होनेका प्रमाण देती हैं। मंदिरकी सुन्दरता हेतु ही इन पर बादमें संगमरमरके पाषाण लगाये गये हैं। मन्दिर तक पहुँचने हेतु लाल पत्थरका एक सुन्दर पुल बना हुआ है। मन्दिरके गर्भगृहमें बिराजमान तीन युगल चरणचिह्नोंके मध्यमें भगवान महावीरके, बाँई ओर गौतमस्वामीके व दाईं ओर सुधर्मास्वामीके चरण हैं। गर्भगृहके बाहर चारों ओर बरामदा है।

परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने ससंघ वि.सं. २०१३ (ई.स. १९५७) व वि.सं. २०२३ (ई.स. १९६७)में इस पवित्र तीर्थकी यात्रा की थी।

समवसरणमें गौतम गणधर

श्रुतावतारकी गुर्वावलि अनुसार भगवान महावीर पश्चात् प्रथम केवली हुए आप भगवानके गणधर थे। आपकी दीक्षा पूर्वका नाम इन्द्रभूति था। आपका समय वी.नि. १२ (ई.स. पूर्व ५२७ से ५१५) था।

(इन गौतमस्वामी आचार्य-केवलीकी भूतकालीन भवों सहितकी कथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढसे प्रकाशित 'भगवान महावीरकी आचार्य परम्परा' पुस्तकमें पृ. १७ से २१ पर होनसे पुनः यहाँ नहीं दे रहे हैं।)

श्री गौतम गणधर द्वारा श्रुतकी उत्पत्ति हुई उसके संदर्भमें श्री धवलाजी प्रथम भागमें कहा है कि—

पंचशैलपुरमें (पंचपहाड़ी अर्थात् पांच पर्वतोंसे शोभायमान राजगृह नगरके पास) रमणीक, नानाप्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त, देव तथा दानवोंसे वंदित और सर्व पर्वतोंमें उत्तम

ऐसे विपुलाचल नामके पर्वतके ऊपर भगवान् महावीरने भव्यजीवोंको अर्थका उपदेश दिया अर्थात् दिव्यध्वनि द्वारा जीवादि पदार्थों और मोक्षमार्ग आदिका उपदेश दिया।

इस अवसर्पिणी कल्पकालके दुःषमा-सुषमा नामके चौथे कालके पिछले भागमें कुछ कम चौतीस वर्ष बाकी रहने पर वर्षके प्रथममास अर्थात् श्रावणमासमें, प्रथमपक्ष अर्थात् कृष्णपक्षमें, प्रतिपदाके दिन प्रातःकालके समय आकाशमें अभिजित नक्षत्रके उदित रहने पर तीर्थ अर्थात् धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार भगवान् महावीर अर्थ-कर्ता हैं। इस प्रकार केवलज्ञानसे विभूषित उन भगवान महावीरके द्वारा कहे गये अर्थको, उसी कालमें और उसी क्षेत्रमें क्षयोपशमविशेषसे उत्पन्न हुए चार प्रकारके निर्मल ज्ञानसे युक्त, वर्णसे ब्राह्मण, गौतमगोत्री, संपूर्ण दुःश्रुतिमें पारंगत, और जीव-अजीवविषयक संदेहको दूर करनेके लिये श्री वर्द्धमानके पादमूलमें उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूतिने अवधारण किया। कहा है कि—

गौतमगोत्री, विप्रवर्णी, चारों वेद और षडंगविद्याका पारगामी, शीलवान और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ऐसा वर्द्धमानस्वामीका प्रथम गणधर इन्द्रभूति इस नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अनन्तर भावश्रुतरूप पर्यायसे परिणत उस इन्द्रभूतिने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप ग्रन्थोंकी एक ही मुहूर्तमें क्रमसे रचना की। अतः भावश्रुत और अर्थ-पदोंके कर्ता तीर्थंकर है। तथा तीर्थंकरके निमित्तसे गौतम गणधर श्रुतपर्यायसे परिणत हुए, इसलिये द्रव्यश्रुतके कर्ता गौतम गणधर है।

प्रथम श्रुतस्कंध प्रणेता

श्री धरसेनाचार्य,
पुष्पदंत व भूतबलि आचार्य

आचार्य धरसेनजी आचार्य अर्हद्बलिके समकालिन पूर्वविद् षट्खंडागमके मूल उत्पत्तिकर्ता थे। आप अन्तसमय गिरनारके–चंद्रगुफामें थे। आपका समय वी.नि. ५६५-६३३ (ई.स. ३८-१०६) गिना जाता है। जब कि पुष्पदंताचार्य राजा जिनपालितके समकालीन तथा उनके मामा थे। इस परसे यह अनुमान किया जा सकता है कि राजा जिनपालित की राजधानी वनवास ही आपका जन्मस्थान है। आप वहाँसे चलकर पुण्डवर्धन अर्हद्बलि आचार्यके स्थान पर आये और उनसे दीक्षा लेकर तुरन्त उनके साथ महिमानगर चले गये, जहाँ अर्हद्बलिने बृहद् यति सम्मेलन एकत्रित किया था। उनका आदेश पाकर पुष्पदंतजी वहाँसे ही एक अन्य साधु भूतबलिजी (आचार्य)के साथ श्री धरसेनाचार्यदेवके सेवार्थ गिरनार चले गये। वहाँ उन्होंने धरसेनाचार्यजीसे षट्खण्डागम

ज्ञान प्राप्त किया। आपकी साधनासे प्रसन्न होकर भूत जातिके देवोंने आपकी अस्त-व्यस्त दंत पंक्तिको सुंदर कर दिया। इतिहासानुसार आप वसुंधरा नगरीके नरवाहन राजा थे, परन्तु आपकी देवों द्वारा दन्तपंक्ति सुंदर हो जानेसे आपका नाम 'पुष्पदंत' पड़ गया। श्री धरसेनजीसे ज्ञान प्राप्त कर गुरुके आदेशानुसार अपने सहधर्मी भूतबलिजीके साथ गुरुसे विदाय लेकर अषाढ शु. ११ को पर्वतसे नीचे आ गये व अंकलेश्वरमें चातुर्मास किया। चातुर्मास पूर्ण कर पश्चात् भूतबलिजीको वहीं छोड़कर आप 'वनवास' आ गये, जहाँ अपने भानजे जिनपालितको दीक्षा देकर सिद्धान्तका अध्ययन कराया। उसके निमित्तसे आपने 'बीसदी सूत्र' नामक रचना करके जिनपालितजीके साथ भूतबलिजीके पास भेज दिया। आपका समय वी.नि. ५८३ से ६३२ गिना जाता है।

पुष्पदंतजीके सहधमी भूतबलिजीके दीक्षागुरु अर्हद्बलिजी व शिक्षागुरु धरसेनजी थे। आप पुष्पदंत आचार्यके गुरुभाई थे, उनके साथ ही उनके गुरु अर्हद्बलिजीने आपको महिमानगरसे गिरनार पर्वत पर धरसेनाचार्यजीकी सेवामें भेजा था। जहाँ आपने धरसेनाचार्यजीके साथ षट्खंडागमका ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनकी भावनानुसार उसे लिपिबद्ध भी किया। आप छोटी वयमें दीक्षा ग्रहण करनेसे आप पुष्पदंतजीके पश्चात् कई समय तक रहे। अतः षट्खंडागमका अधिकांश भाग आपने ही पूर्ण किया। गिरनारमें आपकी साधनासे प्रसन्न होकर भूत जातिके देवोंने आपका नाम 'भूतबलि' नाम रखा। श्रुतपञ्चमी (ज्येष्ठ शु. ५) को आपने षट्खंडागम पूर्ण किया व उसी दिन चतुर्विध संघ सहित उसकी पूजा की। अतः वह दिन श्रुतपञ्चमीके रूपमें मनाया जाता है। आपका समय वी.नि. सं. ५९३-६३३ (ई.स. ६६ से १५६) गिना जाता है।

(यह सारी कथा विस्तारसे श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढसे प्रकाशित 'भगवान महावीरकी आचार्य परम्परा' पुस्तकमें पृ. ५१ से ५४ व ५८ से ६६ पर है।)

षट्खंडागम उपदेशक आचार्यदेव धरसेन भगवंतको कोटि कोटि वंदन।

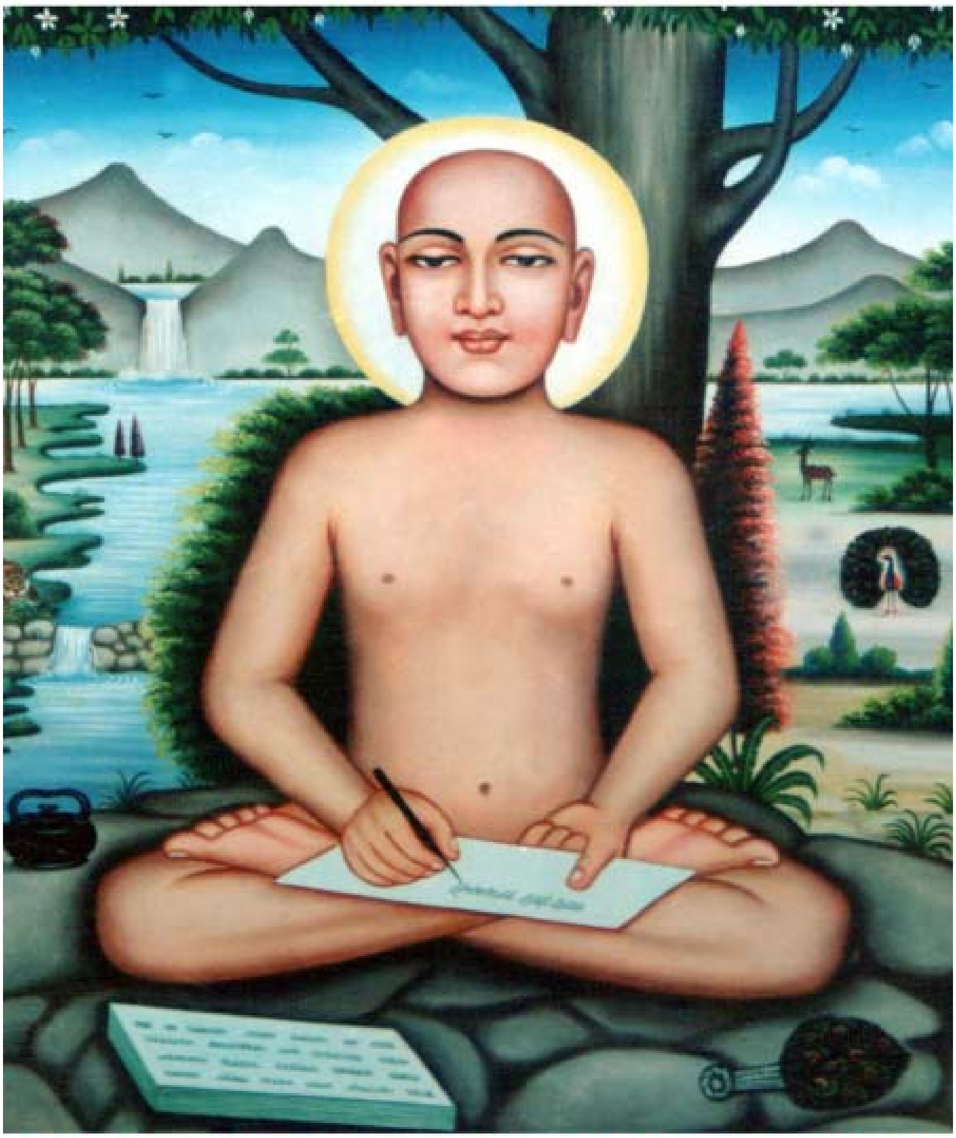

भरतक्षेत्रके महासमर्थ आचार्य श्री कुंदकुंदाचार्य देव

भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव

पद्मनंदि आदि पंचनामके धारक भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेवका जन्म कोण्डकुण्डपुर (दक्षिण भारत)में हुआ था। आपने रत्नत्रयकी शुद्धताको धारण करते हुए 'आत्मद्रव्यका जैसा स्वभाव है' वैसा आपने अपनी पर्यायमें प्रचुरतया व्यक्त किया था।

दन्तकथानुसार वे पूर्वभवके जिनागमसे जिनमुनि प्रेमी थे। तदुपरांत वे इस भवमें सदेह सीमंधर भगवानके दर्शनसे प्राप्त संस्कारित थे। आप व आपके तत्त्वज्ञानसे जैसा जैनशासनमें इतना विश्वसनीय माना जाता था कि प्रत्येक शास्त्र स्वाध्याय या कोई भी शुभकार्यके पूर्वे भगवान महावीर के पश्चात् गौतम गणधर व तत्पश्चात् कितने ही अंग-पूर्वके ज्ञाता आचार्य, मुनि होने पर भी उन सबको याद न करके सीधे भगवान कुंदकुंदाचार्यका नाम लिया जाता है कि :—

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणि।
मंगलम् कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

आपने जैन शासनके हार्द समान अध्यात्म शासनको न मात्र उजागर किया परन्तु उसे अपनी विशेष प्रकारकी श्रुतलब्धिकी विशेषतासे अनेक न्यायों द्वारा ऐसा स्पष्ट किया कि वास्तविक आत्मार्थीको अपने आत्माकी प्राप्ति हुए बिना रहे नहीं। आप विक्रमकी प्रथम शताब्दीमें होनेवाले आचार्य थे।

(आपका विस्तारसे जीवनचरित्र श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढसे प्रकाशित 'भगवान महावीरकी आचार्य परम्परा' पुस्तकमें पृ. ७४ से ८० पर है।)

ऐसे महासमर्थ भावलिंगत्वके तादृश स्वरूप भगवान कुंदकुंदाचार्यदेवको कोटि कोटि वंदना।

सहज सिद्धानंद.

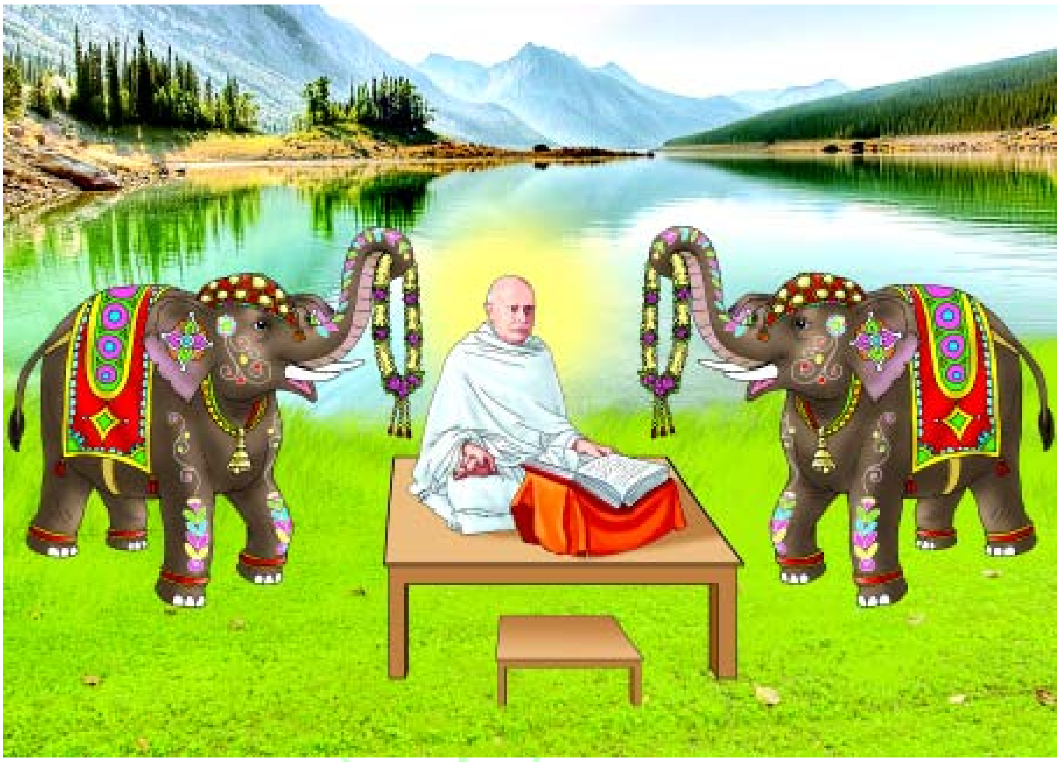

अध्यात्मयुगस्रष्टा

पूज्य गुरुदेवश्रीका अभूतपूर्व ज्ञान

इस भारतवर्षकी पुण्यभूमिमें अवतार लेकर जिस महापुरुषने प्रवर्तमान चौवीसीके चरम तीर्थंकर देवाधिदेव परमपूज्य १००८ श्री महावीरस्वामी द्वारा प्ररूपित तथा तदाम्नायानुवर्ती आचार्यशिरोमणि श्रीमद्भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा समयसारका स्वयं पान करके विक्रमकी इस वीस-इक्कीसवीं शताब्दीमें आत्म-साधनाके पावन पंथका पुनः समुद्योत किया है, रूढिग्रस्त साम्प्रदायिकतामें फँसे हुए जैनजगत पर जिन्होंने जिनागम, सम्यक् प्रबल युक्ति और स्वानुभवसे द्रव्यदृष्टिप्रधान स्वात्मानुभूतिमूलक वीतराग जैनधर्मको प्रकाशमें लाकर अनुपम, अद्भुत और अनन्त-अनन्त उपकार किये हैं, पैतालीस–पैतालीस वर्षके सुदीर्घ काल तक जिनके निवास, दिव्य देशना तथा पुनीत प्रभावनायोगने सोनगढ़ (सौराष्ट्र)को एक अनुपम 'अध्यात्मतीर्थ' बना दिया है

और जिनकी अनेकान्तमुद्रित निश्चय-व्यवहार-सुमेलसमन्वित शुद्धात्मतत्त्वप्रधान अध्यात्मरसनिर्भर चमत्कारी वाणीमेंसे 'गुरुदेवश्रीके वचनामृत' संकलित किये गये है ऐसे सौराष्ट्रके आध्यात्मिक युगपुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका पवित्र जन्म सौराष्ट्रके (भावनगर जिलेके) उमराला ग्राममें वि.सं. १९४६(ई.स. १८९०), वैशाख

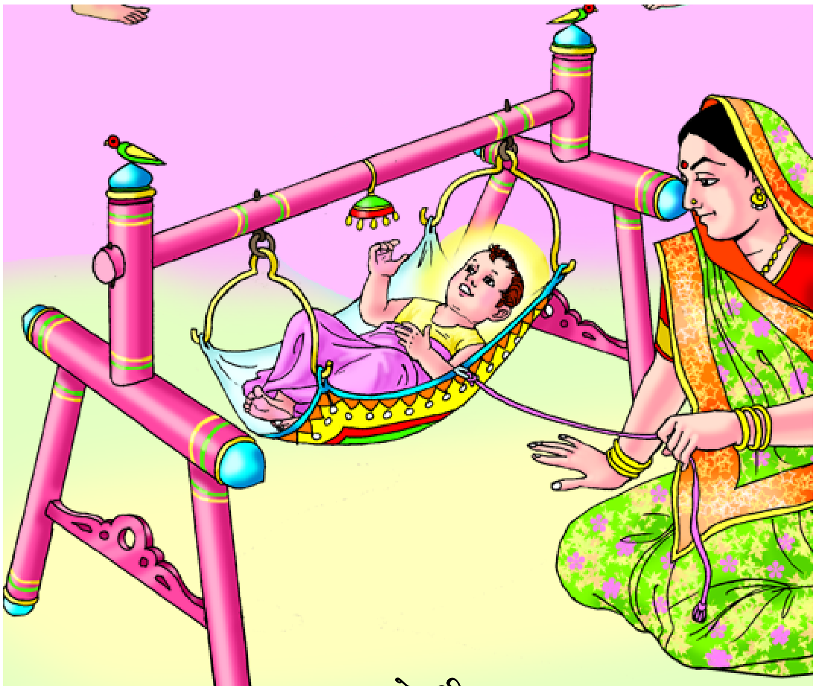

पूज्य गुरुदेवश्रीका जन्म

शुक्ला दूज, रविवारके शुभ दिन हुआ था। पिता श्री मोतीचन्दभाई और माता श्री उजमबा जातिसे दशाश्रीमाली वणिक तथा धर्मसे स्थानकवासी जैन थे।

पूर्वभवमें वे जम्बूद्वीपके पूर्वविदेहके सीमंधर भगवानके समवसरणमें भगवानका उपदेश सुनने जाते थे। वहाँ वे फतेहमंद नामक राजकुमार थे। उन्हें वहाँ अध्यात्मका बहुत रंग था। उनको वहाँ ब्रह्मचर्यका भी बहुत रंग था। उनका देश नौवलपुर

था। उस समय भगवानकी वाणीमें लोकप्रवाहमें यह स्पष्ट था कि यह राजकुमार भविष्यमें तीर्थंकर होंगे। ऐसे पूर्व संस्कारी कहानगुरुके जीवको शैशवसे ही (बालक 'कानजी'को) मुख पर वैराग्यकी सौम्यता और नेत्रोंमें बुद्धि तथा वीर्यकी असाधारण प्रतिभा झलकती थी। वे स्कूलमें तथा जैन पाठशालामें प्रायः प्रथम श्रेणीमें आते थे। स्कूलके लौकिक ज्ञानसे उनके चित्तको संतोष नहीं होता था; उन्हें अपने भीतर ऐसा लगता रहता था कि 'जिसकी खोजमें मैं हूँ वह यह नहीं है'। कभी-कभी यह दुःख तीव्रता धारण करता; और एक बार तो, मातासे बिछुड़े हुए बालककी भाँति वे बाल महात्मा सत्‌के वियोगमें खूब रोये थे।

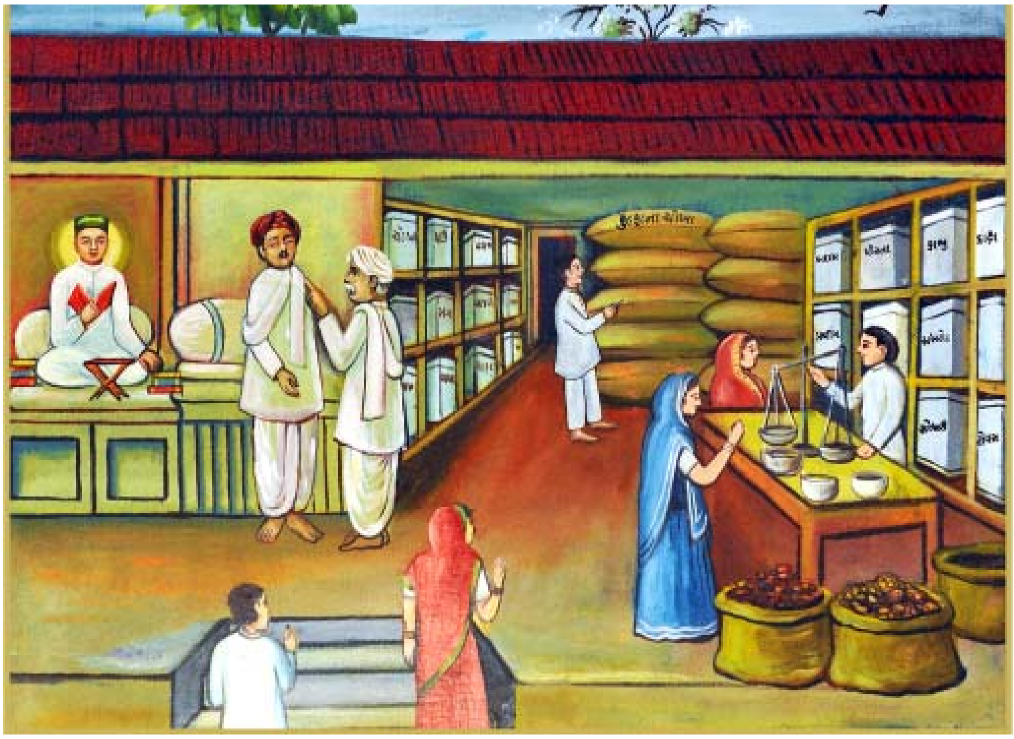

पालेजमें दुकान पर व्यापार और मुख्यरूपसे शास्त्रस्वाध्याय करते 'भगत' कहान गुरुदेव

युवावस्थामें दूकान पर भी वे वैराग्यप्रेरक और तत्त्वबोधक धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। उनका मन व्यापारमय या संसारमय नहीं हुआ था। उनके अन्तरका झुकाव सदा धर्म और सत्यकी खोजके प्रति ही रहता था। उनका धार्मिक अध्ययन, उदासीन जीवन

પાલેજમાં દુકાન પર વ્યાપાર કરતા અને મુખ્યપણે શાસ્ત્રસ્વાધ્યાય કરતા 'ભગત' કહાન ગુરુદેવ

દીક્ષા મહોત્સવ પત્રિકા

तथा सरल अन्तःकरण देखकर सगे-सम्बन्धी उन्हें ‘भगत’ कहते थे। उन्होंने बाईस वर्षकी कुमारावस्थामें आजीवन ब्रह्मचर्यपालनकी प्रतिज्ञा ले ली थी। वि.सं. १९७०(ई.स. १९१४)में मगसिर शुक्ला ९, रविवारके दिन उमरालामें गृहस्थजीवनका त्याग करके विशाल जनसमुदायके बीच उत्सवपूर्वक स्थानकवासी जैन सम्प्रदायका दीक्षाजीवन अंगीकार किया था।

पूज्य गुरुदेवश्रीका हाथीके होदे दीक्षा प्रसंग

गुरुदेवश्री पहलेसे ही तीव्र पुरुषार्थी थे। 'चाहे जैसे कठोर चारित्रका पालन किया जाये तथापि केवली भगवानने यदि अनन्त भव देखे होंगे तो उनमेंसे एक भी भव कम नहीं होगा'—ऐसी काललब्धि एवं भवितव्यताकी पुरुषार्थहीनताभरी बातें कोई करे तो वे सहन नहीं कर सकते थे और दृढ़तासे कहते कि 'जो पुरुषार्थी है उसे अनन्त भव होते ही नहीं, केवली भगवानने भी उनके अनन्त भव देखे ही नहीं, पुरुषार्थीको भवस्थिति आदि कुछ भी बाधक नहीं होता'। 'पुरुषार्थ, पुरुषार्थ और पुरुषार्थ' वह गुरुदेवश्रीका जीवनमंत्र था।

दीक्षा लेकर तुरन्त ही गुरुदेवश्रीने श्वेताम्बर आगमोंका तीव्र अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। वे सम्प्रदायकी शैलीका चारित्र भी बड़ी सख्तीसे पालते थे। कुछ ही समयमें उनकी आत्मार्थिताकी, ज्ञानपिपासाकी तथा उग्र चारित्रकी सुवास स्थानकवासी सम्प्रदायमें इतनी अधिक फैल गई कि समाज उन्हें 'काठियावाडके कोहिनूर'—इस नामसे सम्मानित करने लगा।

दीक्षापर्यायके अरसेमें उन्होंने श्वेताम्बर शास्त्रोंका गहन चिंतन-मननपूर्वक खूब अध्ययन किया। तथापि वे जिसकी खोजमें थे वह उन्हें अभी मिला नहीं था।

जब भगवानके समवसरणमें जम्बूद्वीपके भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव सदेह सीमंधर भगवानके पास गये, तब राजकुमार व बहिनश्रीका जीव (देवाभाई) भी वहाँ थे। उस समय भगवानकी वाणीमें आया कि 'यह राजकुमार यहाँसे भरतक्षेत्रमें जायेगा, वहाँ वह कुंदकुंदार्यदेवके मार्ग पर चलकर पंचमकालमें धर्मतीर्थका प्रकाश करेगा।'

जब कुंदकुंदाचार्यदेव विदेहक्षेत्रमें भगवान सीमंधरनाथके समवसरणमें पधारे थे तब वहाँ श्रुतकेवली व मुनियोंका समूह था। वे एक सप्ताह भर वहाँ रहे थे। वे श्रुतकेवली व मुनियोंसे आशंकाओंका निवारण भी करते थे। कभी कभी जनसमूह भी वहाँ रहता था वे भी ये चर्चाएँ सुनते थे। वहाँसे आनेके पश्चात् भगवत् कुंदकुंदाचार्यदेवने समयसारादि ग्रंथोंकी रचना की। भगवानकी दिव्यध्वनिमें भाग्यशाली भविष्य प्राप्त पूज्य गुरुदेवको वि.सं. १९७८(ई.स. १९२२)में विधिके किसी धन्य क्षणमें दिगम्बर जैनाचार्य श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री समयसार नामक महान ग्रन्थ पूर्वभवके प्रबल

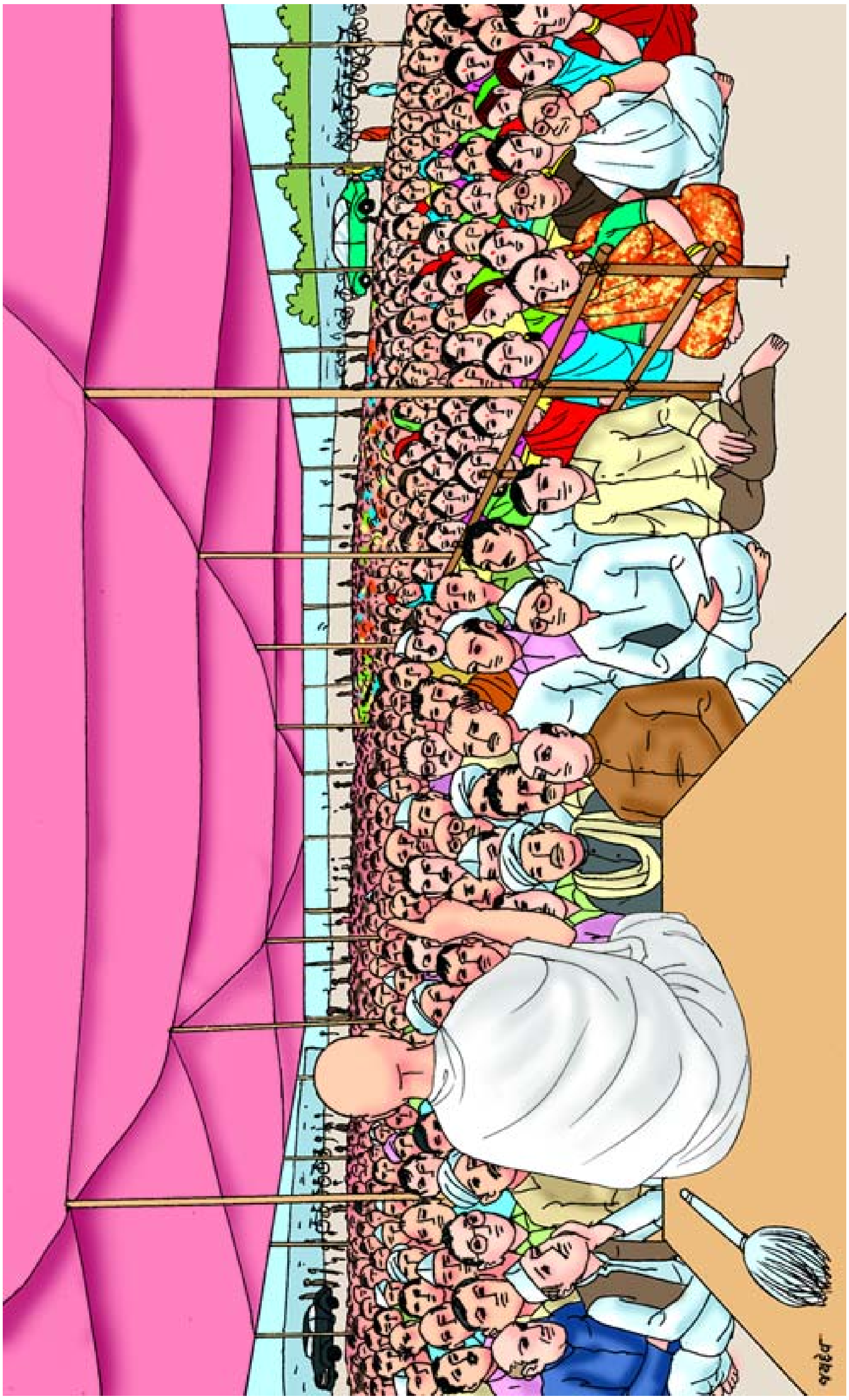

परिवर्तनके पश्चात् हजारोंकी मेदनीमें प्रवचन देते पूज्य गुरुदेवश्री

संस्कारी ऐसे इन महापुरुषके करकमलमें आया। उसे पढ़ते ही उनके हर्षका पार न रहा। जिसकी खोजमें वे थे वह उन्हें मिल गया। गुरुदेवश्रीके अन्तर्नेत्रोंने समयसारमें अमृतके सरोवर छलकते देखे; एकके बाद एक गाथा पढ़ते हुए उन्होंने घूँट भर-भरकर वह अमृत पिया। गुरुदेवश्रीके आत्मानंदका पार नहीं रहा। उनके अन्तर्जीवनमें परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली हुई परिणतिने निज घर देखा। उपयोगका प्रवाह सुधासिन्धु ज्ञायकदेवकी ओर मुड़ा। उनकी ज्ञानकला अपूर्व रीतिसे विकसित होने लगी।

वि.सं. १९९१ तक स्थानकवासी सम्प्रदायमें रहकर पूज्य गुरुदेवश्रीने सौराष्ट्रके अनेक मुख्य शहरोंमें तथा शेष कालमें सैकड़ों छोटे-बड़े ग्रामोंमें विहार करके लुप्तप्राय अध्यात्मधर्मका खूब उद्योत किया। उनके प्रवचनोंमें ऐसे अलौकिक आध्यात्मिक न्याय आते थे कि जो अन्यत्र कहीं सुननेको नहीं मिले हों। प्रत्येक प्रवचनमें वे भवान्तकारी कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन पर अत्यन्त अत्यन्त भार देते थे। वे कहते थे। ''शरीरकी खाल उतारकर नमक छिड़कनेवाले पर भी क्रोध नहीं किया—ऐसे व्यवहारचारित्र इस जीवने अनन्तबार पाले हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया।....लाखों जीवोंकी हिंसाके पापकी अपेक्षा मिथ्यादर्शनका पाप अनन्तगुना है।....सम्यक्त्व आसान नहीं है, लाखों-करोड़ोंमें किसी विरले जीवको ही वह होता है। सम्यक्त्वी जीव अपने सम्यक्त्वका निर्णय स्वयं ही कर सकता है। सम्यक्त्वी समस्त ब्रह्मांडके भावोंको पी गया होता है। सम्यक्त्व वह कोई अलग ही वस्तु है। सम्यक्त्व रहित क्रियाएँ एक रहित शून्योंके समान हैं।....जानपना वह ज्ञान नहीं है; सम्यक्त्व सहित जानपना ही ज्ञान है। ग्यारह अंग कण्ठाग्र हों परन्तु सम्यक्त्व न हो तो अज्ञान है।....सम्यक्त्वीको तो मोक्षके अनन्त अतीन्द्रिय सुखका अंश प्राप्त हुआ होता है। वह अंश मोक्षसुखके अनन्तवें भाग होने पर भी अनन्त है।'' इस प्रकार सम्यग्दर्शनका अद्‌भुत माहात्म्य अनेक सम्यक् युक्तियोंसे, अनेक प्रमाणोंसे और अनेक सचोट दृष्टान्तों द्वारा वे लोगोंको गले उतारते थे। उनका प्रिय एवं मुख्य विषय सम्यग्दर्शन था।

गुरुदेवश्रीको समयसार प्ररूपित यथार्थ वस्तुस्वभाव और स्वानुभूतिप्रधान सच्चा दिगम्बर निर्ग्रन्थमार्ग दीर्घकालसे अन्तरमें सत्य लगता था और बाह्यमें वेश तथा आचार भिन्न थे,—यह विषम स्थिति उन्हें खटकती थी; इसलिये उन्होंने सोनगढ़में योग्य समय

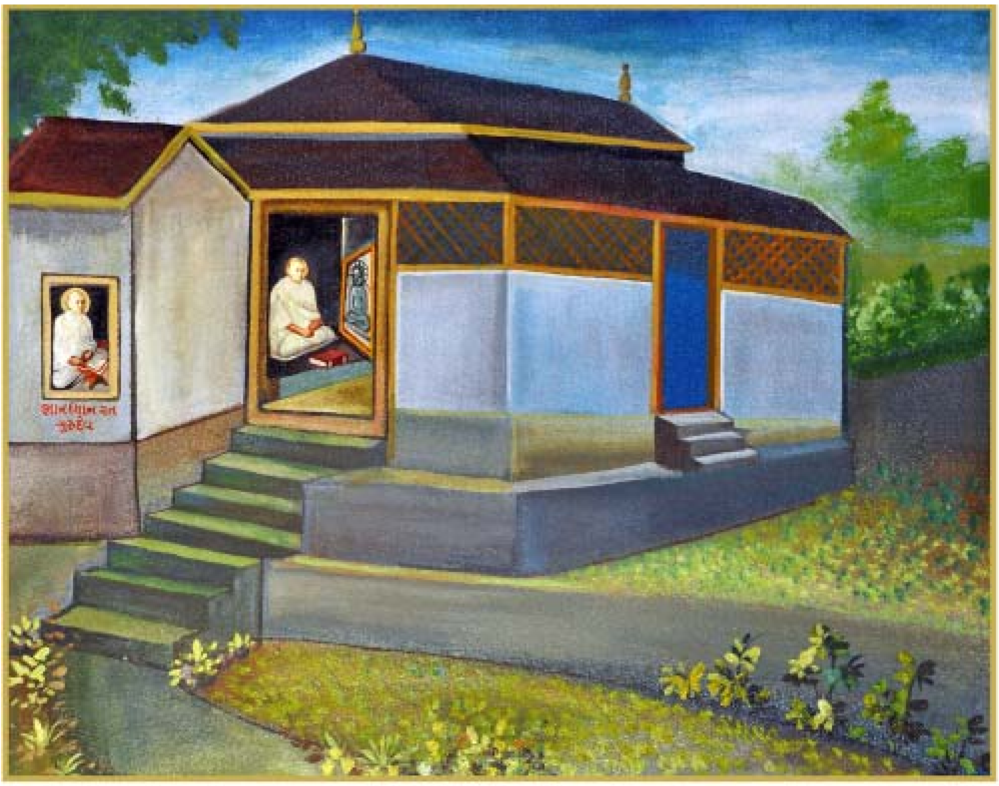

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा धर्मपरिवर्तन

पर—वि.सं. १९९१के चैत्र शुक्ला १३ (महावीरजयन्ती)के दिन—'परिवर्तन' किया, स्थानकवासी सम्प्रदायका त्याग किया, 'अबसे मैं आत्मसाधक दिगम्बर जैनमार्गानुयायी ब्रह्मचारी हूँ' ऐसा घोषित किया। 'परिवर्तन'के कारण प्रचण्ड विरोध हुआ, तथापि उन निडर और निस्पृह महात्माने उसकी कोई परवाह नहीं की। हजारोंकी मानवमेदनीमें गर्जता वह अध्यात्मकेसरी सत्‌के लिए जगतसे नितान्त निरपेक्ष होकर सोनगढ़के एकान्त स्थानमें जा बैठा। प्रारम्भमें तो खलबली मची; परन्तु गुरुदेवश्री काठियावाड़के स्थानकवासी जैनोंके हृदयमें बस गये थे, गुरुदेवश्रीके प्रति वे सब मुग्ध हो गये थे, इसलिए 'गुरुदेवश्रीने जो किया होगा वह समझकर ही किया होगा' ऐसा विचारकर धीरे-धीरे लोगोंका प्रवाह सोनगढ़की ओर बहने लगा। सोनगढ़की ओर बहता हुआ सत्संगार्थीजनोंका प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही गया।

પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી દ્વારા ધર્મપરિવર્તન

समयसार, प्रवचनसार, नियमसारादि शास्त्रों पर प्रवचन देते हुए गुरुदेवश्रीके प्रत्येक शब्दमें बड़ी गहनता, सूक्ष्मता और नवीनता नीकलती थी। जो अनन्त ज्ञान एवं आनन्दमय पूर्ण दशा प्राप्त करके तीर्थंकरदेवने दिव्यध्वनि द्वारा वस्तुस्वरूपका निरूपण किया, उस परम पवित्रदशाका सुधास्यन्दी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मामें प्रगट करके सद्गुरुदेवने अपनी विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्रोंमें विद्यमान गूढ़ रहस्य समझकर मुमुक्षुओं पर महान-महान उपकार किया।

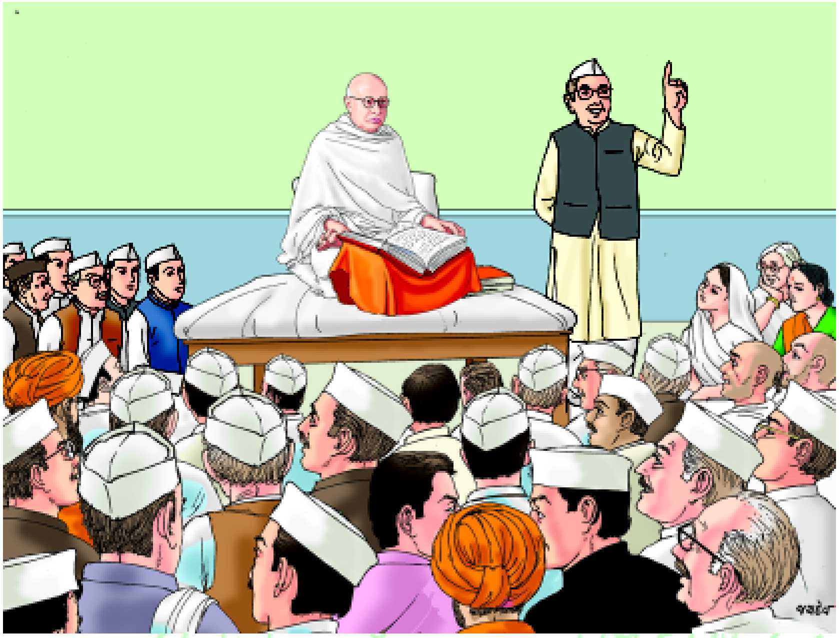

स्वानुभूतिप्रधान पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन सुनकर, आश्चर्यान्वित होकर अहोभाव व्यक्त करते हुए देश-विदेशके विद्वतगण

गुरुदेवश्रीकी वाणी सुनकर सैकड़ों शास्त्रोंके अभ्यासी विद्वान भी आश्चर्यचकित हो जाते थे और उल्लसित होकर कहते थे : 'गुरुदेवश्री! आपके प्रवचन अपूर्व हैं; उनका श्रवण करते हुए हमें तृप्ति नहीं होती। आप कोई भी बात समझाओ उसमेंसे हमें नया नया ही जाननेको मिलता है। नव तत्त्वका स्वरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका स्वरूप, स्याद्वादका स्वरूप या सम्यक्त्वका स्वरूप, उपादान-निमित्तका स्वरूप या साध्य-साधनका स्वरूप, द्रव्यानुयोगका स्वरूप या चरणानुयोगका स्वरूप, गुणस्थानका स्वरूप या बाधक-साधकभावका स्वरूप, मुनिदशाका स्वरूप या केवलज्ञानका स्वरूप—जिस जिस विषयका स्पष्टीकरण आपके श्रीमुखसे हम सुनते हैं उसमें हमें अपूर्व भाव दृष्टिगोचर होते हैं। आपके प्रत्येक शब्दमें वीतरागदेवका हृदय प्रगट होता है।'

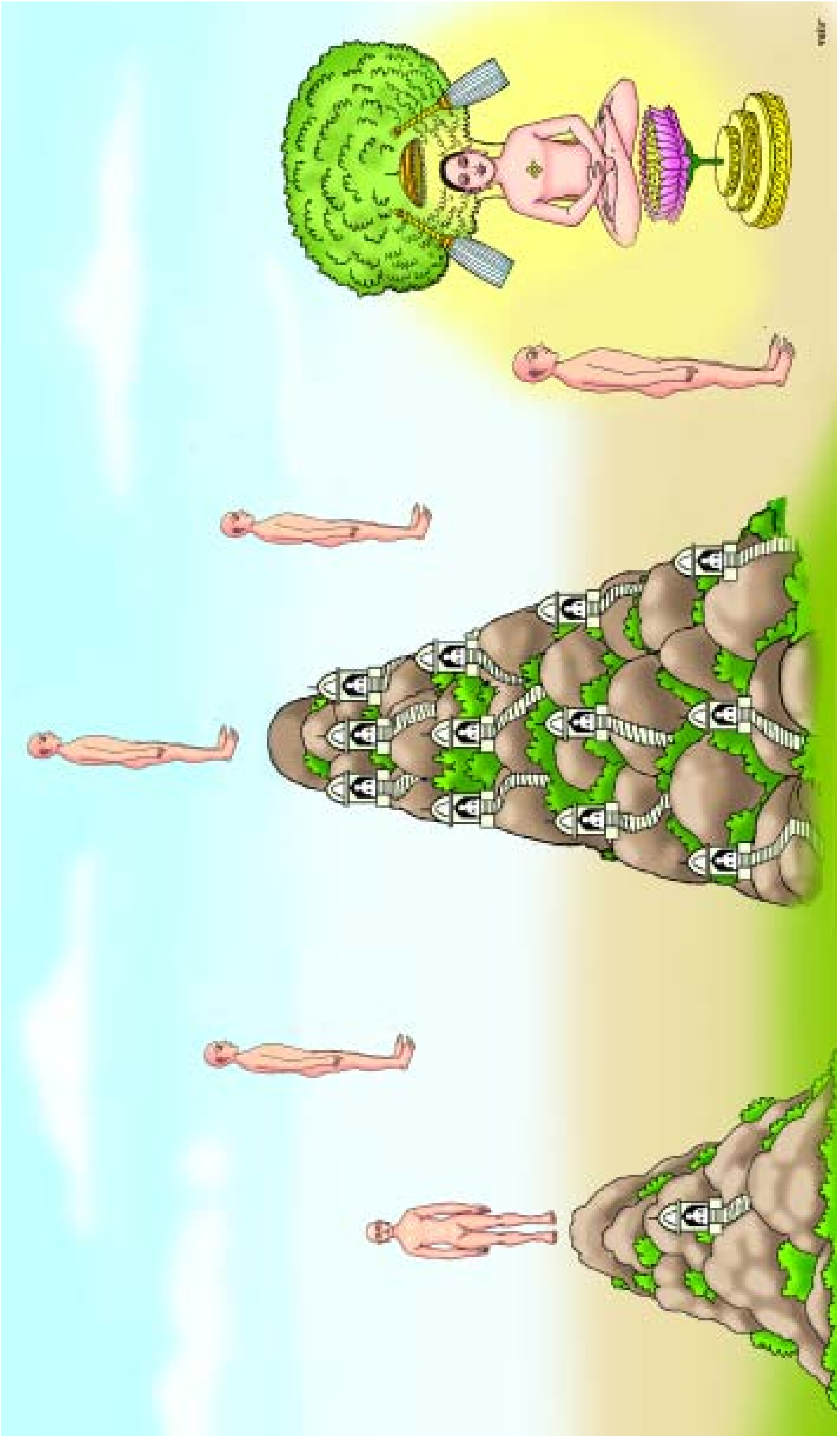

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवका भगवान सीमंधरनाथके दर्शनार्थ विदेहगमन

गुरुदेवश्री बारम्बार कहते थे : 'समयसार सर्वोत्तम शास्त्र है।' समयसारकी बात करते हुए उन्हें अति उल्लास आता था। समयसारकी प्रत्येक गाथा मोक्ष देनेवाली है ऐसा वे कहते थे। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवके सर्व शास्त्रों पर उन्हें अपार प्रेम था। 'भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवका हम पर महान उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं'— ऐसा वे अनेकोंबार भक्तिभीने अन्तरसे कहते थे। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्रमें सर्वज्ञवीतराग श्री सीमन्धरभगवानके समवसरणमें गये थे और वहाँ आठ दिन रहे थे, उस विषयमें गुरुदेवश्रीको रंचमात्र भी शंका नहीं थी। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवके विदेहगमनके सम्बन्धमें वे अत्यन्त दृढतापूर्वक कई बार भक्तिभीने हृदयसे पुकारकर कहते थे कि—'कल्पना मत करना, इन्कार मत करना, यह बात ऐसी ही है; मानो तब भी ऐसी ही है, नहीं मानो तब भी ऐसी ही है; यथातथ्य है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाणसिद्ध है'। श्री सीमन्धरप्रभुके प्रति गुरुदेवश्रीको अतिशय भक्तिभाव था। कभी-कभी तो सीमन्धरनाथके विरहमें परम भक्तिवंत गुरुदेवश्रीके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह जाती थी।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा अन्तरसे खोजा हुआ स्वानुभवप्रधान अध्यात्ममार्ग—दिगम्बर जैनधर्म ज्यों-ज्यों प्रसिद्ध होता गया त्यों-त्यों अत्याधिक जिज्ञासु आकर्षित हुए। गाँव-गाँवमें 'दिगम्बर जैन मुमुक्षुमण्डल' स्थापित हुए। सम्प्रदायत्यागसे उठा विरोध-झंझावात शान्त हो गया। हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर जैन तथा सैकड़ों अजैन भी स्वानुभूतिप्रधान वीतराग दिगम्बर जैनधर्मके श्रद्धालु हो गये। हजारों दिगम्बर जैन रूढ़िगत बहिर्लक्षी प्रथा छोड़कर पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रवाहित शुद्धात्मतत्त्वप्रधान अनेकान्त-सुसंगत अध्यात्म-प्रवाहमें श्रद्धा-भक्ति सहित सम्मिलित हो गये। पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रभावना–उदय दिन–प्रतिदिन अधिकाधिक वृद्धिगत होता गया।

गुरुदेवश्रीके मंगल प्रतापसे सोनगढ़ धीरे-धीरे अध्यात्मविद्याका एक अनुपम केन्द्र-तीर्थधाम बन गया। बाहरसे हजारों मुमुक्षु तथा अनेक दिगम्बर जैन, पण्डित, त्यागी, ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्रीके उपदेशका लाभ लेने हेतु आने लगे। तदुपरान्त, सोनगढ़में बहुमुखी धर्मप्रभावनाके विविध साधन यथावसर अस्तित्वमें आते गये;—वि.सं. १९९४(ई.स. १९३८)में श्री स्वाध्यायमंदिर, वि.सं.१९९७(ई.स. १९४१)में श्री

सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमंदिर, १९९८(ई.स. १९४२)में श्री समवसरणमन्दिर, २००३(ई.स. १९४७)में श्री कुन्दकुन्दप्रवचनमंडप, २००९(ई.स. १९५३)में श्री मानस्तंभ, २०३०(ई.स. १९७४)में श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममंदिर, २०४१(ई.स. १९८५)में श्री पंचमेरु नंदीश्वर जिनालय आदि भव्य धर्मायतन निर्मित हुए। देश-विदेशमें निवास करनेवाले जिज्ञासु पूज्य गुरुदेवश्रीके अध्यात्मतत्त्वोपदेशसे नियमित लाभान्वित हो सकें इस हेतु गुजराती तथा हिन्दी 'आत्मधर्म' मासिकपत्रका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसी बीच कुछ वर्षो तक 'सद्गुरुप्रवचनप्रसाद' नामक दैनिक प्रवचन-पत्र भी प्रकाशित होता था। तदुपरांत समयसार, प्रवचनसार आदि अनेक मूल शास्त्रका विपुल मात्रामें—लाखोंकी संख्यामें—प्रकाशन हुआ। हजारों प्रवचन टेपरिकार्ड किये गये। इस प्रकार गुरुदेवश्रीका अध्यात्म-उपदेश मुमुक्षुओंके घर-घरमें गूँजने लगा। प्रतिवर्ष ग्रीष्मावकाशमें विद्यार्थीयोंके लिए और श्रावणमासमें प्रौढ़ गृहस्थोंके लिए धार्मिक शिक्षणवर्ग चलाए जाते थे और आज भी चलाए जाते हैं। इस प्रकार सोनगढ़ पूज्य गुरुदेवश्रीके परम प्रतापसे बहुमुखी धर्मप्रभावनाका पवित्र केन्द्र बन गया।

पूज्य गुरुदेवश्रीके पुनीत प्रभावसे सौराष्ट्र-गुजरात तथा भारतवर्षके अन्य प्रान्तोंमें स्वानुभूतिप्रधान वीतराग दिगम्बर जैनधर्मके प्रचारका एक अद्‌भुत अमिट आन्दोलन फैल गया। जो मंगलकार्य भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेवने गिरनार पर वाद प्रसंग पर किया था उसी प्रकारका, स्वानुभवप्रधान दिगम्बर जैनधर्मकी सनातन सत्यताकी प्रसिद्धिका गौरवपूर्ण महान कार्य अहा! पूज्य गुरुदेवश्रीने श्वेताम्बरबहुल प्रदेशमें रहकर अपने स्वानुभवमुद्रित सम्यक्त्वप्रधान सदुपदेश द्वारा हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बरोंमें श्रद्धाका परिवर्तन लाकर, सहजतासे तथापि चमत्कारिक प्रकारसे किया। सौराष्ट्रमें नामशेष हो गये आत्मानुभूतिमूलक दिगम्बर जैनधर्मके—पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनायोगसे जगह-जगह हुए दिगम्बर जैन मन्दिर, उनकी मंगल प्रतिष्ठाएँ तथा आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा हुए—पुनरुद्धारका युग आचार्यवर श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीके मन्दिरनिर्माण-युगकी याद दिलाता है। अहा! कैसा आचार्यतुल्य उत्तम प्रभावनायोग! सचमुच, पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा इस युगमें एक समर्थ प्रभावक आचार्य समान जिनशासनोन्नतिकर अद्‌भुत अनुपम कार्य हुए हैं।

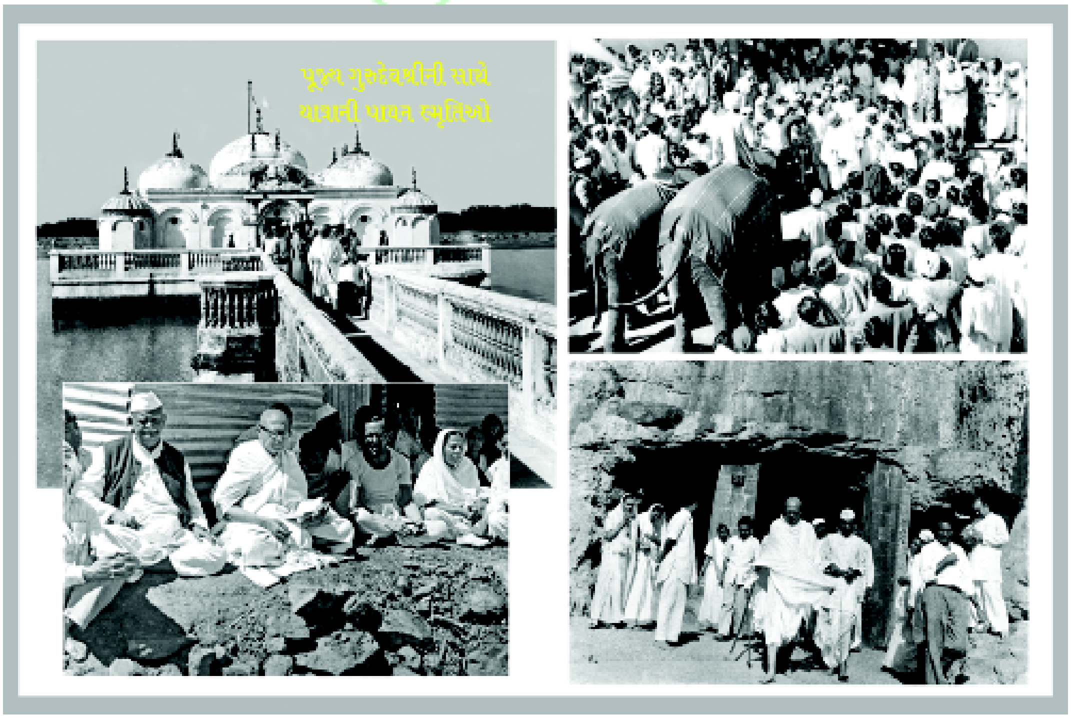

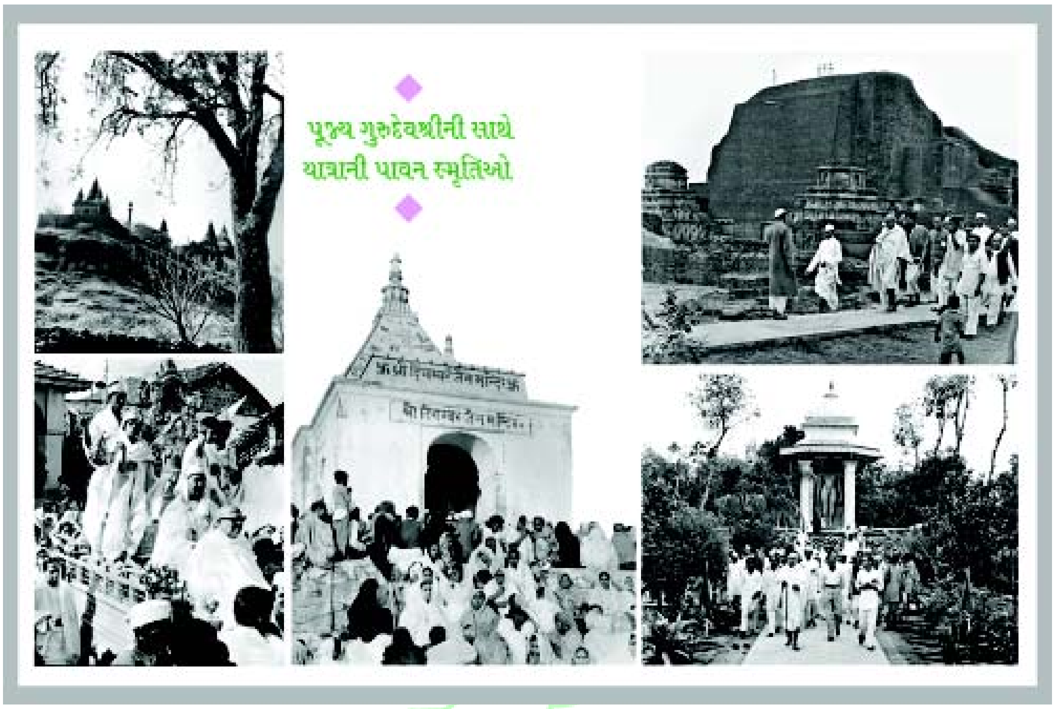
પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીની સાથે
યાત્રાની પાવન સ્મૃતિઓ

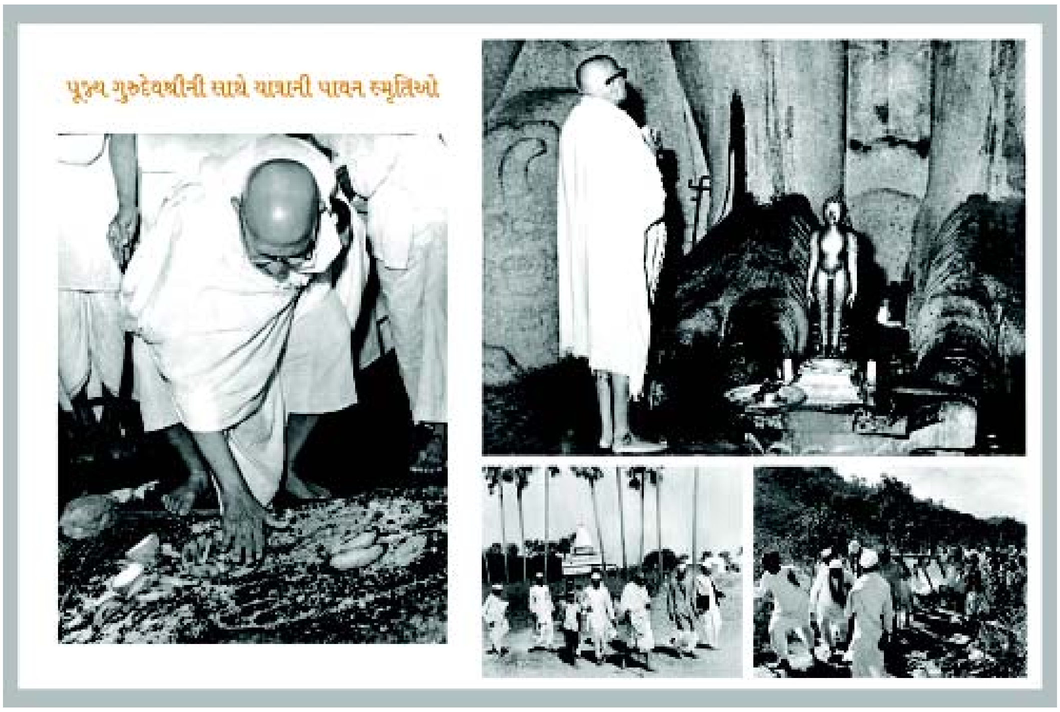
પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીની સાથે યાત્રાની પાવન સ્મૃતિઓ

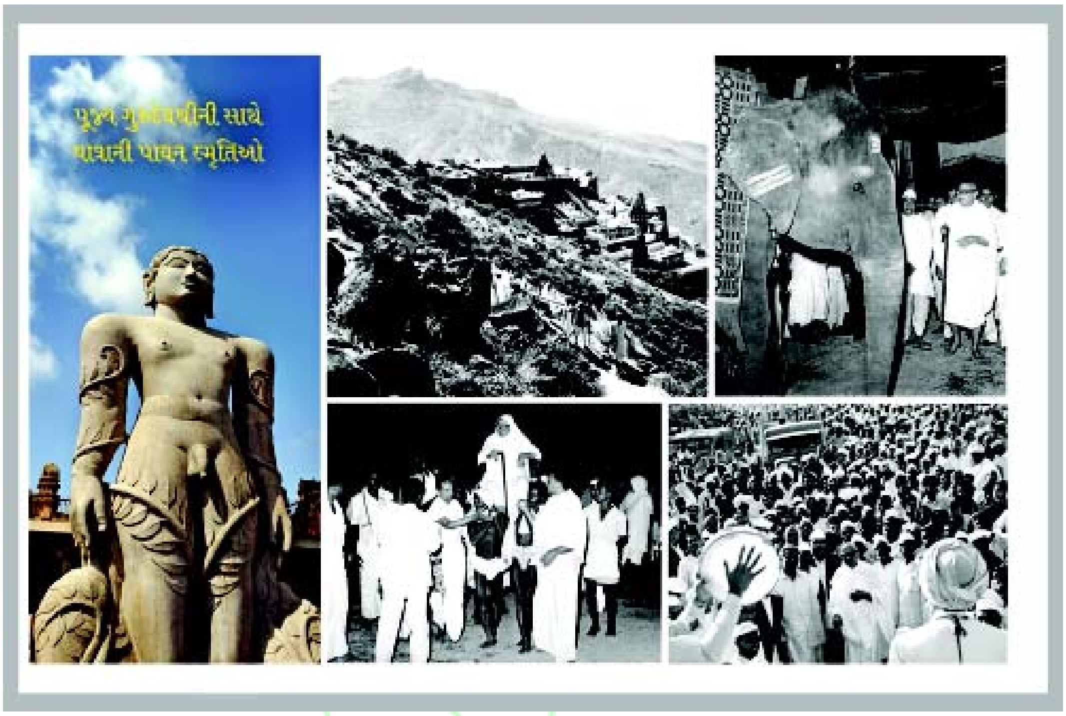
પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીની સાથે
યાત્રાની પાવન સ્મૃતિઓ

અભિવાદન - અભિનંદન

पूज्य गुरुदेवश्रीने दो-दो बार सहस्राधिक विशाल मुमुक्षु संघ सहित पूर्व, उत्तर, मध्य तथा दक्षिण भारतके जैनतीर्थोंकी पावन यात्रा करके, भारतके अनेक छोटे-बड़े नगरोंमें प्रवचन दिये और नाईरोबी (आफ्रिका)का, नवनिर्मित दिगम्बर जिनमन्दिरकी प्रतिष्ठाके निमित्त, प्रवास किया—जिसके द्वारा

भगवान श्री सीमंधरनाथ और कुन्दकुन्दाचार्यसे मिला ज्ञानप्रवाह।
पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा फैला वह ज्ञानप्रवाह और उससे छायी अध्यात्मकी हरियाली

समग्र भारतमें तथा विदेशोंमें शुद्धात्मदृष्टिप्रधान अध्यात्मविद्याका खूब प्रचार हुआ।

यह असाधारण धर्मोद्योत स्वयमेव बिना प्रयत्नके साहजिक रीतिसे हुआ। गुरुदेवश्रीने धर्मप्रभावनाके लिए किसी योजनाका विचार नहीं किया था। वह उनकी प्रकृतिमें ही नहीं था। उनका समग्र जीवन निजकल्याणसाधनाको समर्पित था। उन्होंने जो सुधाझरती आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जिन कल्याणकारी तथ्योंको आत्मसात् किया था, उनकी अभिव्यक्ति उनसे 'वाह! ऐसी वस्तुस्थिति!' ऐसे विविध प्रकारसे सहजभावसे उल्लासपूर्वक हो जाती थी, जिसका गहरा आत्मार्थप्रेरक प्रभाव श्रोताओंके हृदय पर पड़ता था। मुख्यतः इस प्रकारसे उनके द्वारा सहजरूपसे धर्मोद्योत हो गया था। ऐसी

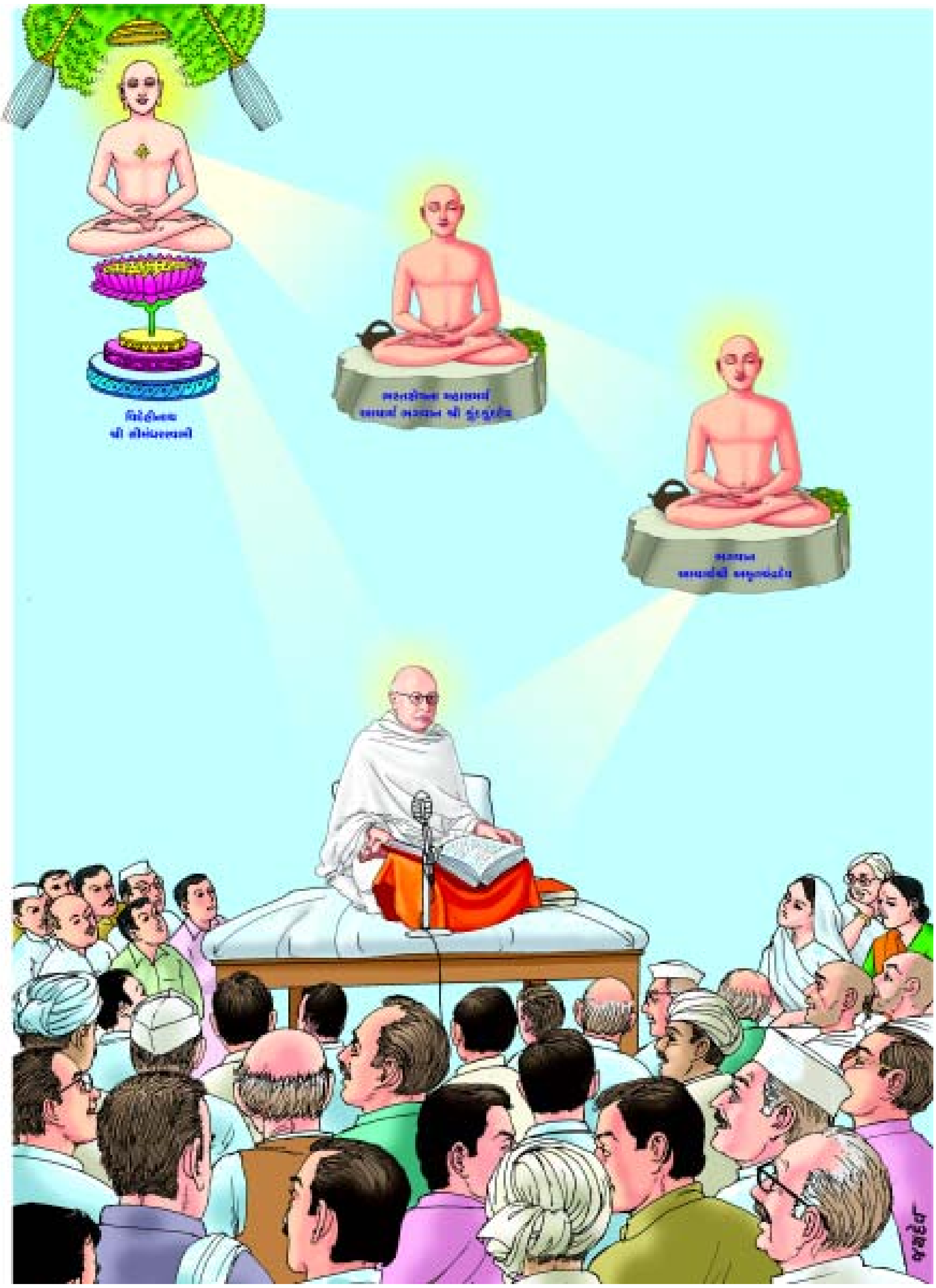

देश-विदेशके मुमुक्षुओंको मिलता पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा भगवान सीमंधरनाथ,
भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव और भगवान अमृतचंद्राचार्यदेवका ज्ञानप्रवाह

प्रबल बाह्य प्रभावना होने पर भी पूज्य गुरुदेवश्रीको बाहरकी किंचित्मात्र रुचि नहीं थी; उनका जीवन तो आत्माभिमुख ही था।

पूज्य गुरुदेवश्रीका अन्तर सदा 'ज्ञायक.... ज्ञायक....ज्ञायक, भगवान आत्मा, ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव, शुद्ध...शुद्ध...शुद्ध, परम पारिणामिकभाव' इस प्रकार त्रैकालिक ज्ञायकके आलम्बनभावसे निरन्तर–जागृतिमें या निद्रामें—परिणमित हो रहा था। प्रवचनोंमें और तत्त्वचर्चामें वे ज्ञायकके स्वरूपका तथा उसकी अनुपम महिमाका मधुर संगीत गाते ही रहते थे। अहो! स्वतन्त्रताके और ज्ञायकके उपासक गुरुदेवश्री! आपने मोक्षार्थियोंको मुक्तिका सच्चा मार्ग बतलाया!

अहा! गुरुदेवश्रीकी महिमाका वर्णन कहाँ तक करें! उनका तो द्रव्य ही कोई अलौकिक था। इस पंचमकालमें इन महापुरुषका—आश्चर्यकारी अद्भुत आत्माका—यहाँ अवतार हुआ यह कोई महाभाग्यकी बात है। उन्होंने स्वानुभूतिकी अपूर्व बात प्रगट करके सारे भारतके जीवोंको जगाया है। गुरुदेवश्रीका द्रव्य 'तीर्थंकर द्रव्य' था। पूर्वभवमें भगवान सीमंधरनाथकी वाणीसे संस्कारित व वर्तमान भवमें इस भरतक्षेत्रमें पधारकर भगवान महावीर तथा भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव तत्पश्चात् १००० वर्ष बाद भगवान अमृतचंद्राचार्यदेव व उसके १००० वर्ष पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्रीने महान-महान उपकार किया है।

आज भी पूज्य गुरुदेवश्रीके सातिशय प्रतापसे सोनगढ़का शीतल वातावरण आत्मार्थियोंकी आत्मसाधनालक्षी आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंके मधुर सौरभसे महक रहा है। पूज्य गुरुदेवश्रीके चरणकमलके स्पर्शसे अनेक वर्षों तक पावन हुआ ऐसा यह अध्यात्मतीर्थधाम सोनगढ़—आत्मसाधना एवं बहुमुखी धर्मप्रभावनाका पवित्र निकेतन—सदैव आत्मार्थियोंके जीवन-पथको आलोकित करता रहेगा।

विदेहवासी भगवान सीमंधरस्वामीके अध्यात्म संस्कारोंसे सिंचित भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा तथा उनके परम भक्त भगवान अमृतचंद्राचार्यदेव द्वारा इस प्रकार भरतक्षेत्रवासी भगवान महावीरस्वामी प्ररूपित मुक्तिका मार्ग पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीको मिला। वह उन्होंने भगवान सीमंधरस्वामीसे पूर्वके संस्कारोंके बल अपने

अन्तरमें आत्मसात् करके वह ही भगवंतोंका ज्ञानप्रवाह निस्पृहभावसे जगतके जीवोंको दिया। यह उनका मुमुक्षुसमाज पर अनुपम उपकार है।

हे परमपूज्य परमोपकारी कहानगुरुदेव! आपके पुनीत चरणोंमें—आपकी मंगलकारी पवित्रताको, पुरुषार्थप्रेरक ध्येयनिष्ठ जीवनको, स्वानुभूतिमूलक सन्मार्गदर्शक

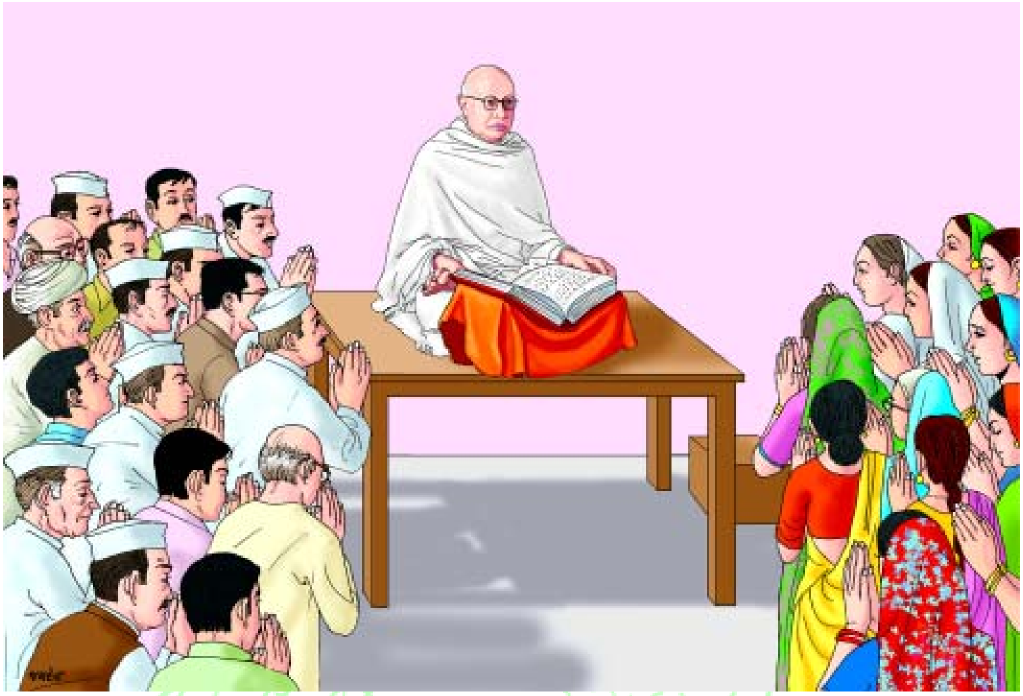

उपदेशोंको और तथाविध अनेकानेक उपकारोंको हृदयमें रखकर—अत्यन्त भक्तिपूर्वक हमारी भावभीनी वंदना हो! आपके द्वारा प्रकाशित वीर-कुन्दप्ररूपित स्वानुभूतिका पावन पथ जगतमें सदा जयवंत वर्तो! जयवन्त वर्तो!

अहो! उपकार जिनवरका, कुन्दका ध्वनि दिव्यका।
'जिन'के, 'कुन्द'के, 'ध्वनि'के दाता श्री गुरुकहानका॥

नित्ये सुधाचरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण सुमेघ! तने नमुं हुं,
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं,

श्रीमद् राजचंद्र

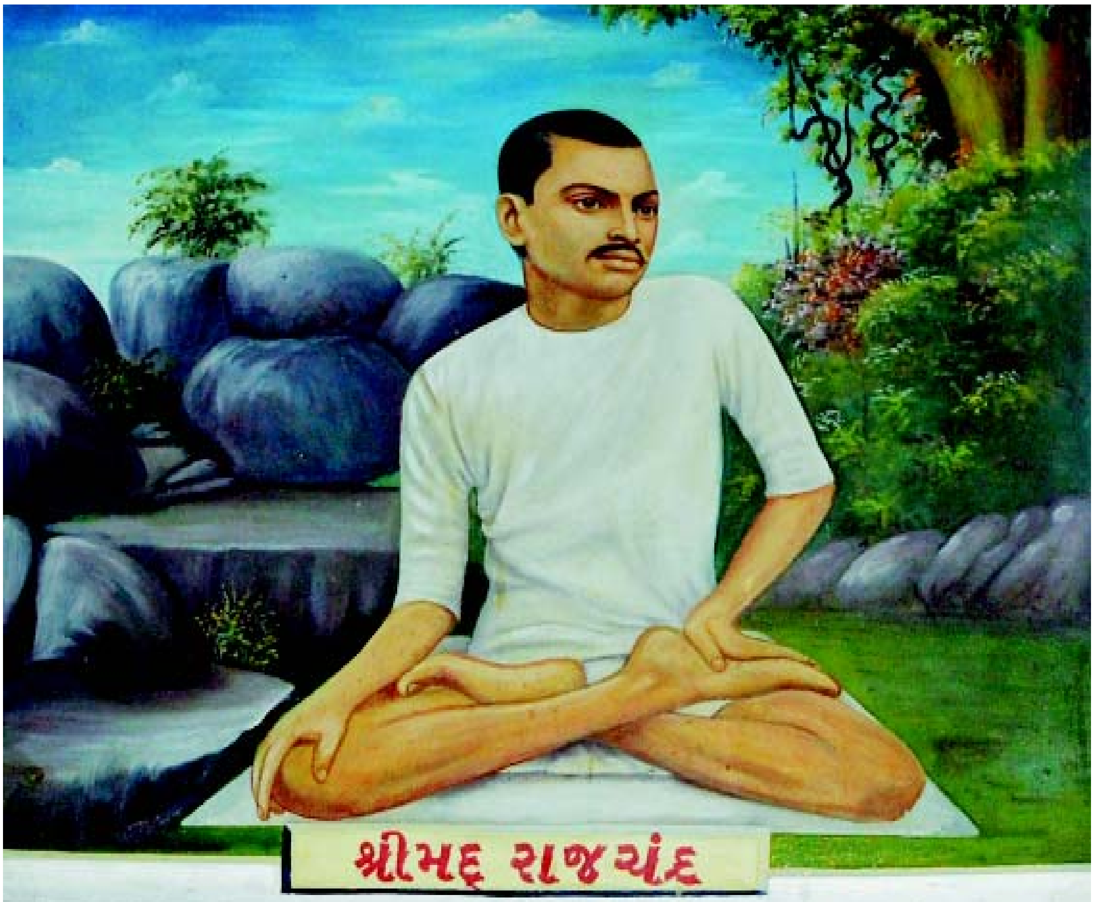

समीप समयज्ञ श्रीमद् राजचंद्र एक महान तत्त्ववेत्ता थे। वे विश्वकी एक महान विभूतिके रूपमें वर्तमानमें प्रसिद्ध हैं।

उनका जन्म वि.सं. १९२४ (ई.स. १८६७) कार्तिक शुक्ला-१५के दिन मोरबी अन्तर्गत ववाणिया गाँवमें दशाश्रीमाली जातिमें हुआ था। उनके पिताश्रीका नाम रवजीभाई पंचाणभाई महेता और माताश्रीका नाम देवबाई था। उनको बहुत छोटी उम्रमें आत्मिक सुखकी तीव्र झंखना हुआ करती थी।

बाल्यावस्थामें श्रीमद् राजचंद्रको अमीचंदभाईके अग्निसंस्कारके विचारमें प्राप्त होता जातिस्मरणज्ञान

उनकी स्मरणशक्ति बचपनसे ही बहुत तीव्र थी। जब वे सात वर्षके थे तब ववाणियामें अमीचंद नामक गृहस्थ रहते थे। श्रीमद्‌जी पर उन्हें बहुत प्रेम था। उन अमीचंदभाईका सर्प दंससे मरण हुआ। उन्हें आसपासके लोगोंसे यह बात जानने मिली। वे उनके दादाके पास गये और पूछा, कि मरण क्या है? क्योंकि 'मरण क्या है', वे उसे नहीं जानते थे।

दादाको लगा, कि यह तो बालक है और मरणकी बात करनेसे उसे डर उत्पन्न होगा। ऐसा जानकर उन्होंने यह बात टाल दी। 'मरण' शब्द प्रथम ही उन्होंने सुना था। तब तक उनके कान तक यह शब्द पहुँचे ही नहीं थे। अतः मरण क्या है? वह जाननेकी उन्हें तीव्र उत्कंठा हुई। बारम्बार उन्होंने दादाजीसे इस सम्बन्धमें पूछा। उन्होंने कहा, कि अमीचन्द मर गया है–यह सत्य है। मरण अर्थात् शरीरमेंसे जीव निकल जाना और अब शरीर हलन-चलन आदि कुछ भी नहीं कर सकता। अतः शरीरको तालाबके पास जाकर जला देंगे।

कुछ समय वे जहाँ तहाँ चुपचाप रहे। बादमें तलाब पर गये। वहाँ किनारे पर एक बबूलका पेड़ था। उन्होंने ऊपर चढ़कर देखा तो अमीचन्दका शब जलता दिखाई दिया और बहुत लोग उन्हें घेरकर बैठे थे। यह देखकर उन्हें विचार आया, कि मनुष्यको जला देनेकी क्रूरता? यह सब क्या हो रहा है? ये विचार आते ही आवरण दूर हुआ। पूर्वभव याद आये। इस प्रकार सात वर्षकी उम्रमें उन्हें जातिस्मरणज्ञान हुआ। जातिस्मरण सम्बन्धमें तथा पुनर्जन्म सम्बन्धके विचारके लिए 'श्रीमद् राजचंद्र' नामक पुस्तक अवलोकनीय है। यह पढ़नेसे जातिस्मरण सम्बन्धित बहुत जाननेको मिल सके ऐसा है।

महात्मा गांधीजीने उनके जीवनके संदर्भमें लिखा है, वह समझने योग्य है, वह यह कि 'श्रीमद्‌के दो वर्षके गाढ़ परिचयमें प्रत्येक क्षण उनमें (मैंने) देखा, कि उनके समागममें असाधारणता है, कि स्वयंने जो अनुभव किया है, वह ही उन्होंने लिखा है। उसमें कहीं कृत्रिमता नहीं है। अन्य पर अपना प्रभाव या असर हो, ऐसी उन्होंने एक लाईन (पंक्ति) भी लिखी हो ऐसा मैंने नहीं देखा। उनके पास हमेशा कोई धर्मपुस्तक और एक खाली कॉपी पड़ी रहती थी। उस कॉपीमें स्वयमूके मनके जो

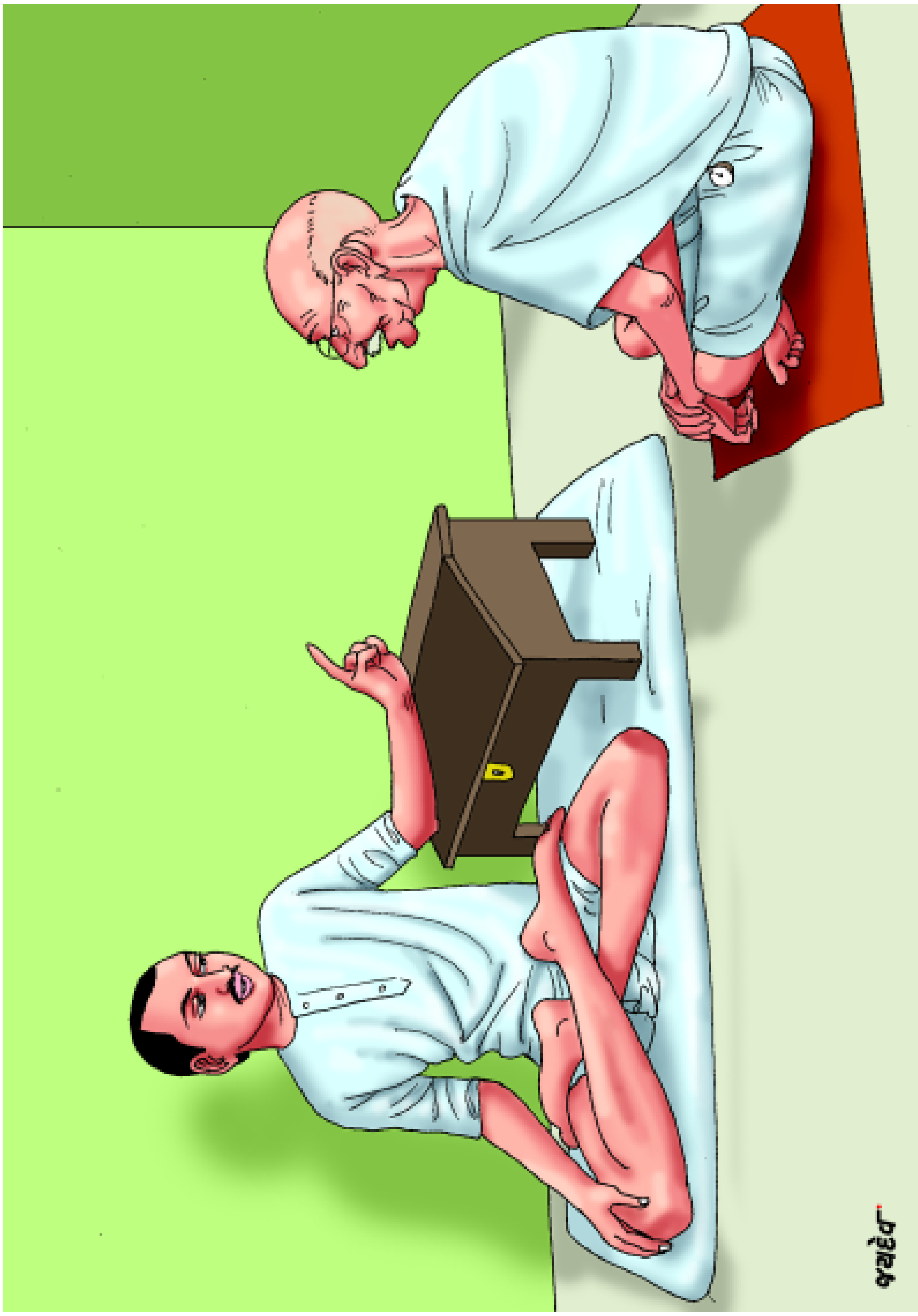

श्रीमद् राजचंद्रके साथ गांधीजी द्वारा विचार विमर्श

विचार आते वह लिख ड़ालते थे। किसी समय गद्य या किसी समय पद्य होता था। ''उनके खाते, बैठते, सोते, प्रत्येक क्रिया करते उसमें वैराग्य तो होता ही था। किसी समय किसी भी वैभवके प्रति उन्हें मोहित होते हुए मैंने नहीं देखा।'' इस भांति गांधीजीने बहुत कुछ उनका चरित्र लिखा है।

'श्रीमद् राजचंद्र' जो पुस्तक अगाससे प्रकाशित हुआ है, उसमें आपके अन्य साधर्मीयोंको लिखे पत्र, मोक्षमाला, भावनाबोध, आत्मसिद्धि, अपूर्व अवसर....व अनेकोनेक सुंदर भाववाही पद्य आदि कृतियोंका संकलन है। जिनको पढ़नेसे पाठकका जीवन वैराग्य, सत्संगचाहक, सत्पुरुषकी महिमामय, भक्तिमय आदि बनता हुआ, निज आत्मकल्याणकी भावनारूप आत्मार्थीत्वसे निखर उठे ऐसे गूढ़ भावोंसे भरपूर है। ये पत्रादि उन्होंने किसी योजनाबद्ध ढंगसे नहीं लिखे या अन्य किसी हेतु नहीं लिखे। वे अध्यात्मप्रिय होनेसे जैसा उनका जीवन था, जैसी अपनी परिणति थी, वैसे ही वे लिखे गये थे।

श्रीमद्‌जीके जीवन-प्रसंगोंसे सर्वोच्च प्रमाणिकता, सत्यनिष्ठा, नीतिमत्ता, अन्यका लेशमात्र भी हृदय दुःखानेकी अनिच्छा और अनुकंपादि, व आत्मार्थपोषक वस्तु-तत्त्वकी सिद्धान्तिक अनुकरणीयता आदि अनेक गुणोंका स्वाभाविक दर्शन होता है। उनकी लेखन शैली अत्यंत परिमार्जित, भाववाही व स्वयं ही शब्दकोष न हो ऐसी प्रतीत होती है।

आपने आत्मलक्ष्यी परिणामों सह वि.सं. १९५७ (ई.स. १९०१) गुजराती चैत्र कृष्णा ५को देह परिवर्तन किया था।

आपके पत्रों व रचनाओं परसे प्रतीत होता है, कि आपने २४ वर्षकी उम्रमें आत्मसाक्षात्कार किया था। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने वर्तमानयुगमें आपकी रचना-संग्रहके यथार्थ हार्दको अपने प्रवचनोंमें प्रकाशित करके मुमुक्षुसमाज पर अवर्णनीय उपकार किया है। आप द्वारा रचित 'आत्मसिद्धि' तथा 'अपूर्व अवसर' पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रकाशित प्रवचन अत्यंत मार्मिक व पठनीय हैं। पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको भी आपका साहित्य आत्मार्थषोषक होनेसे अत्यंत प्रिय था।

जैन पौराणिक कथाओंका तात्पर्य

चारों अनुयोगका सार, सर्व सिद्धांतका सार, दिव्यध्वनिका सार क्या है? वह बताया जाता है :—

भगवानकी वाणीमें–चारों अनुयोगमें यह आया है कि ''जो जिनेन्द्र है वह ही आत्मा है''–ऐसा मनन करो। आत्माका सर्वज्ञ और वीतराग होनेके पश्चात् जो वाणीमें आया है वह ऐसा आया कि, ''हम जो स्वरूपसे हैं उतना ही स्वरूप तुम हो और तू जो स्वरूपसे है, वह स्वरूपसे हम हैं''—परमेश्वरके स्वरूपमें व आत्माके स्वरूपमें कुछ फरक नहीं है। दो वस्तुस्वरूपसे भिन्न है, पर भावस्वरूपसे भिन्न नहीं हैं।

जिन आत्माओंने स्वयंके स्वरूपको वीतराग ज्ञाता-दृष्टारूपसे जानकर भेदका लक्ष्य छोड़कर अभेद चैतन्यका साधन किया, उन आत्माओंकी कथाको पुराण (जैन पौराणिक कथा) कहते हैं। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि साधना करनेवालोंका वर्णन पुराणोंमें (जैन पौराणिक कथाओंमें) है। उन सब वर्णनमें क्या आता है? कि ये सभी शलाका पुरुषोंने 'वीतराग प्रभु जैसा ही मैं आत्मा हूँ, उनको मोक्ष प्रकट हो गया है व मेरा मोक्ष स्वभावमें भरा हुआ है'—''ऐसे आत्मा-तत्त्वको वीतराग परमात्मा जैसा'' उन शलाका पुरुषोंने जाना था वह ही प्रथमानुयोग (कथानुयोग)में कहनेका तात्पर्य–सार है।

–पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.